पूर्वांचल खेती

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

वर्ष : 34 अक्टूबर 2024 अंक : 10

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वान्चल खेती

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

वर्ष 34 | अक्टूबर 2024 | अंक 10

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. के.एम. सिंह

वरिष्ठ प्रसार अधिकारी/सह प्राध्यापक

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय का इतिहास एक पौधा जो बरगद बन गया i
आर.आर. सिंह

गेहूँ उत्पादन की उन्नत तकनीक 01
सौरभ वर्मा, आर.आर. सिंह एवं के. एम. सिंह

चने की उन्नत खेती 07
संजीत कुमार, के0 एम0 सिंह एवं अभिषेक यादव

रबी फसलों की प्रमुख प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ 10
अखिलेश कुमार यादव, के.एम. सिंह एवं डी.के. सिंह

चुकंदर की वैज्ञानिक खेती 13
निहारिका सिंह, सी० एन० राम एवं अखिल कुमार चौधरी

पपीते की वैज्ञानिक खेती 16
जगवीर सिंह, एस० के० वर्मा, अश्वनी कुमार आर्य

पूर्वान्चल विकास के लिए कृषि की आधुनिक तकनीकियाँ 21
के.एम. सिंह एवं आर. आर. सिंह

कुपोषण को खत्म करने में पोषण वाटिका की भूमिका 24
अंजली, साधना सिंह एवं श्वेता चौधरी

खाद्य आपूर्ति में वर्टिकल फार्मिंग की भूमिका 27
सुमन पूनियाँ, आस्तिक झा, निहारिका सिंह

देशी गाय के दूध की महत्ता 30
डी0 के0 श्रीवास्तव, एस0के0 वर्मा, एवं ओ0 पी0 वर्मा

कृषि मोबाइल ऐप्सः भारतीय कृषि का परिवर्तन 31
रूपन रघुवंशी एवं अश्वनी कुमार सिंह

अक्टूबर माह में किसान भाई क्या करें? 33

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 34

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नवीन सिंह	05542–248019	9451891735
2.	बस्ती	डॉ. एस.एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
4.	अयोध्या	डॉ. विनायक शाही	05278–254522	8755011086
5.	मऊ	डॉ. वी.के. सिंह	0547–2536240	8005362591
6.	चंदौली	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	0541–2260595	9415687643
7.	बहराइच	डॉ. शैलेन्द्र सिंह	05252–236650	9411195409
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. अश्वनी कुमार	–	7985749643
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. ओ.पी. वर्मा	05541–241047	9452489954
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	इं. ए.के. पाण्डे	–	9919485148
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	नानपारा–बहराइच	डॉ. शशिकान्त यादव	–	9415188020
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. आर.के. सिंह	–	9452990600
23.	आँकुशपुर–गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. एस.पी. सिंह	–	9458362153
25.	लैदोरा–आजमगढ़	डॉ. एल.सी. वर्मा	–	7376163318

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
2.	गोण्डा	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
3.	देवरिया	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
4.	गाजीपुर	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, अयोध्या	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9934318392	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. आर.सी. वर्मा	9411320383	–
6.	बहराइच	डॉ. मनीष कुशवाह	7404673927	0548–223690

डॉ. बिजेन्द्र सिंह
कुलपति
Dr. Bijendra Singh
Vice-Chancellor

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या - 224 229 (उ.प्र.), भारत
Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology
Kumarganj, Ayodhya - 224 229 (U.P.) India

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय एक लम्बी यात्रा के साथ अपनी स्थापना के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में प्रवेश कर रहा है। स्थापना से अब तक के समयाकाल में इस विश्वविद्यालय के हिस्से में अनगिनत उपलब्धियां हैं। इन्ही उपलब्धियों व शिक्षा, शोध प्रसार के क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्वविद्यालय परिवार के एकजुट प्रदर्शन के परिणामस्वरूप इस वर्ष विश्वविद्यालय कृषि शिक्षा के संस्थानों के बीच नैक मूल्यांकन में A^{++} ग्रेड प्राप्त कर अपनी ऐतिहासिक सफलता का जश्न भी मना रहा है। सही मायनों में स्थापना का स्वर्ण जयन्ती वर्ष विश्वविद्यालय के स्वर्णिम काल से जुड़ गया है।

इस गौरवशाली अवसर पर प्रसार निदेशालय द्वारा प्रकाशित कृषि मासिक पत्रिका का यह अंक स्वर्ण जयन्ती विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है जो हमारे लिए गर्व की बात है। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनायें देता हूं तथा समस्त विश्वविद्यालय परिवार को बधाई देता हूँ।

(बिजेन्द्र सिंह)
कुलपति

Ph.: *(05270) 262161 (O)* **Telefax :** *262097 (O)* **Ph.:** *262842 (R)* **Telefax :** *262032 (R)* **Email :** *vcnduat2018@gmail.com*

डॉ. आर. आर. सिंह
अपर निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

पत्रिका का यह अंक हम सबके लिये विशेष है। विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 50वीं वर्षगांठ मना रहा है। स्थापना से लेकर अब तक की यात्रा में विश्वविद्यालय के नाम अनेकानेक उपलब्धियां रही हैं, इन सबके बीच यह उल्लेख करना समीचीन है कि आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय अपने स्वर्ण जयन्ती वर्ष में अपने स्वर्णिम काल से अपनी चमक बिखेर रहा है। यह सब विश्वविद्यालय के शिक्षकों, वैज्ञानिकों व कर्मियों की लगन व मेहनत तथा हमारा नेतृत्व का परिणाम है।

इन सफल परिस्थितियों के बीच विश्वविद्यालय अपने कृषक व ग्रामीण समुदाय को अत्याधुनिक तकनीकों से अवगत कराता रहे और उनके सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देता रहे ऐसा हमारा प्रयास है। स्वर्ण जयंती वर्ष को यादगार बनाने के लिए पत्रिका का यह अंक स्वर्ण जयन्ती विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा ह। आशा है पत्रिका की पाठ्य सामग्री हमारे कृषक भाईयों, प्रसार कार्यकर्ताओं व ग्रामीण युवाओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

(आर.आर. सिंह)

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय का इतिहास

एक पौधा जो बरगद बन गया

आर.आर. सिंह, अपर निदेशक प्रसार

पूर्वी उत्तर प्रदेश के कृषि एवं ग्रामीण विकास को समर्पित आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या का वर्तमान वैभवशाली स्वरूप अपनी स्थापना के पांच दशक पूर्ण कार्य कर रहा है। 477 एकड़ में फैला विश्वविद्यालय कभी एक कमरे के किराए के भवन में संचालित होना प्रारम्भ हुआ था। यह वर्तमान पीढ़ी के लिए अचरज भरा हो सकता है, परन्तु सत्य यही है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों व ग्रामीणों की खुशहाली का संवहन यह विश्वविद्यालय देश के प्रख्यात शिक्षाविद आचार्य नरेंद्र देव की स्मृति में उनके नाम पर स्थापित किया गया था। विश्वविद्यालय प्रारम्भिक रूप से तत्कालीन फैजाबाद जनपद के मसौधा में स्थापित करने का निर्णय लिया गया था और इसी निर्णय के तहत विश्वविद्यालय की आधारशिला 15 जनवरी, 1974 को भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के कर कमल से मसौधा में रखी गई। उत्तर प्रदेश कृषि विभाग के वरिष्ठ अधिकारी श्री लक्ष्मी नारायण राय को पहला ओ.एस.डी. विश्वविद्यालय संचालन के लिए नियुक्त किया गया और अक्टूबर 1974 में यह जिम्मेदारी डॉक्टर ए0 एस0 श्रीवास्तव को प्रदेश सरकार द्वारा सौंप दी गयी। इसी क्रम में प्रदेश सरकार में विश्वविद्यालय के मुख्य परिसर के लिए विस्तृत स्थल की आवश्यकता को देखते हुए मुख्य परिसर की स्थापना का निर्णय वर्ष 1975 में जनपद की दक्षिणी सीमा कुमारगंज में स्थापित करने का निर्णय लिया। 10 अक्टूबर, 1975 को प्रदेश सरकार ने सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी श्री अम्बा दत्त पाण्डेय को विश्वविद्यालय का प्रथम कुलपति नियुक्त किया।

विश्वविद्यालय का संचालन फैजाबाद शहर के नाका स्थित ग्राम स्वावलम्बी विद्यालय के भवन को किराए पर लेकर प्रारम्भ किया गया। विश्वविद्यालय पहले कुल सचिव के रूप में डॉ. आर. पी. चन्दोला को नवम्बर 1975 में इसकी जिम्मेदारी दी गई। प्रदेश सरकार द्वारा गठित एक उच्च स्तरीय समिति की 22 जनवरी, 1976 को सौंपी गई, एक रिपोर्ट के आधार पर कुमारगंज में शैक्षिक प्रशासनिक एवं आवासीय क्षेत्र को चिन्हित किया गया तथा जुलाई, 1976 में ई.सी.एफ. और एन.डी.एस. परियोजनाओं के तहत प्रदेश में कृषि अनुसंधान के लिए क्रमशः फैजाबाद के मसौधा व बहराइच जनपद के घाघरा घाट में संचालित धान अनुसंधान केन्द्रो के अधिकृत रूप से विश्वविद्यालय के अधीन स्थानान्तरित कर दिया गया। विश्वविद्यालय की कृषि संकाय में कुल 20 विभागों की स्थापना कर शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया गया तथा ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक डॉक्टर कीर्ति सिंह को 12 फरवरी, 1977 को पहले अधिष्ठाता के रूप में जिम्मेदारी दी गई।

विश्वविद्यालय का शैक्षणिक कार्य विषम व विपरीत परिस्थितियों में डाभा सेमर, मसौधा में स्थित सब स्टेशन ट्रेनिंग सेन्टर से प्रारम्भ हुआ। विश्वविद्यालय के पहली विद्वत परिषद् की बैठक 12 फरवरी, 1977 को आयोजित की गई और अक्टूबर 1978 में 24 छात्रों के साथ स्नातक कृषि

शिक्षा पाठ्यक्रम की विधिवत सुरूवात हुई। वर्ष 1980 में शिक्षण कार्य मुख्य परिसर, कुमारगंज में प्रारम्भ किया गया। नवीनतम तकनीकियों को किसानों तक पहुॅचाने हेतु वर्ष 1982 में प्रसार निदेशालय की स्थापना की गयी जो 1977 से कुछ विषय वस्तु विशेषज्ञों द्वारा संचालित किया जा रहा था। वर्ष 1984 में बहराइच जनपद में कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना के साथ आज पूर्वांचल में 25 कृषि विज्ञान केन्द्र व चार कृषि ज्ञान केन्द्र अपनी प्रसार सेवाएं दे रहा है। दशकों पूर्व प्रारम्भ हुआ यह सफर वर्तमान में मुख्य परिसर में स्थापित पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, मत्स्यकीय महाविद्यालय, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, कॉलेज आफ एग्री बिजनेस मैनेजमेंट के अपने–अपने भवनो तथा जनपद अम्बेडकर नगर जनपद में स्थापित कृषि अभियंत्रण महाविद्यालय तथा आजमगढ़ एवं गोण्डा जनपद में स्थापित कृषि महाविद्यालय के रूप में आत्मविश्वास सफलता और उत्साह के साथ लम्बी यात्रा पूरी कर चुका है।

कृषि, शिक्षा, शोध व प्रसार के क्षेत्र में देश भर में अपना परचम लहरा रहे आचार्य नरेंन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय ने प्रदेश की राज्यपाल व कुलाधिपति माननीय आनंदीबेन पटेल के मार्गदर्शन तथा वर्तमान कुलपति डॉ. बिजेन्द्र सिंह के लगातार दूसरे कार्यकाल में विश्वविद्यालय नए कीर्तिमान व मानक गढ़ रहा है। आज यह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नैक मूल्यांकन में पहले चक्र में ही देश का पहला A^{++} कृषि विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त कर चुका है। विश्वविद्यालय जिस मुकाम पर आज स्थित है यह निश्चय ही कठिन दुरूह व प्रतिकूल परिस्थितियों में विशालकाय वटवृक्ष का स्वरूप लेने का अप्रतिम उदाहरण बन चुका है।

गेहूँ उत्पादन की उन्नत तकनीक

सौरभ वर्मा*, आर.आर. सिंह** एवं के. एम. सिंह***

भारत में गेहूँ एक मुख्य फसल है। गेहूँ का लगभग 97 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित है। भारत के 13 प्रतिशत फसली क्षेत्र में गेहूं उगाया जाता है। धान के बाद गेहूं भारत की सबसे महत्तवपूर्ण अनाज की फसल है और भारत के उत्तर और उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों के लाखों लोगों का मुख्य भोजन है। यह प्रोटीन, विटामिन और कार्बोहाइड्रेटस का समृद्ध स्त्रोत है और संतुलित भोजन प्रदान करता है। रूस, अमेरिका और चीन के बाद भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा गेहूं का उत्पादक है। विश्व में पैदा होने वाली गेहूं की पैदावार में भारत का योगदान 8.7 फीसदी है। यदि किसान भाई परम्परागत विधि की जगह गेहूँ की वैज्ञानिक विधि एवं सघन पद्धतियों को अपनायें तो उत्पादन को दो गुना तक बढ़ाया जा सकता है, जिसकी अपार सम्भावनायें हैं।

प्रमुख प्रजातियाँ

गेहूँ की प्रजातियों का चुनाव भूमि एवं साधनों की दशा एवं स्थिति के अनुसार किया जाता है। मुख्यतः तीन प्रकार की प्रजातिया होती है। सिंचित दशा वाली, असिंचित दशा वाली एवं ऊसरीली भूमि की प्रजातियाँ।

असिंचित दशा

इसमें मगहर (के 8027), इंद्रा (के 8962), गोमती (के 9465), के 9644, मन्दाकिनी (के 9351), एच.डी.आर. 77, एच.डी. 2888, एच.यू.डब्ल्यू. 533 एवं नरेन्द्र गेहूँ 4018 आदि हैं।

सिंचित दशा

सिंचित दशा वाली प्रजातियाँ सिंचित दशा में दो प्रकार की प्रजातियाँ पायी जाती हैं, एक तो समय से बुवाई के लिए देवा (के 9107), एच.पी. 1731 (राजलक्ष्मी), नरेन्द्र गेहूँ 1012, नरेन्द्र गेहूँ 5054, उजियार (के 9006), डी. एल. 784–3 (वैशाली), एच.यू.डब्ल्लू. 468, एच.य. ूडब्ल्लू. 510, एच.डी. 2888, एच.डी. 2967, एच.डी. 3226 (पूसा यशस्वी), यूपी 2382, पी.बी.डब्ल्लू. 443, पी.बी.डब्ल्यू. 550, एच.डी. 2824, एच.डी. 3043, एच. डी. 1563, एच.डी. 2985, एच.डी. 3086, एच.डी. 3226, सी.बी.डब्ल्यू. 38, डी.बी.डब्ल्यू. 187 (करण वन्दना), डी.बी.डब्ल्यू. 222 (करण नरेन्द्र), डी.बी.डब्ल्यू. 252 (करण श्रिया), डी.बी.डब्ल्यू. 39, आदि हैं।

देर से बुवाई के लिए त्रिवेणी (के 8020), सोनाली (एच. पी. 1633), गंगा (एच.डी. 2643), डी.बी. डब्ल्यू. 14, के 9533, एच.पी. 1744, नरेन्द्र गेहूँ 1014, नरेन्द्र गेहूँ 2036, नरेन्द्र गेहूँ 1076, यूपी 2425, के 9423, के 9903, एच.डब्ल्यू. 2045, पी.बी.डब्ल्यू. 373, पी.बी. डब्ल्यू. 752, डी.बी.डब्ल्यू. 16, डी.बी.डब्ल्यू. 173, डी.बी. डब्ल्यू. 107 आदि हैं।

ऊसरीली भूमि के लिए

लोक 1, प्रसाद (के 8434), के.आर.एल. 1–4, के.आर. एल. 19, के.आर.एल. 210, के.आर.एल. 213, एन. डब्ल्यू. 1067, एन.डब्ल्यू. 4018, एन.डब्ल्यू. 5054 आदि हैं, उपर्युक्त प्रजातियाँ अपने खेत एवं दशा को समझकर चयन करना चाहिए।

जलवायु व भूमि का चयन

गेहूँ की खेती के लिए समशीतोषण जलवायु की आवश्यकता होती है, इसकी खेती के लिए अनुकूल तापमान बुवाई के समय 20–25 डिग्री सेंटीग्रेट उपयुक्त माना जाता है। गेहूँ सभी प्रकार की कृषि योग्य भूमियों में पैदा हो सकता है परन्तु दोमट से भारी दोमट, जलोढ़ मृदाओ में गेहूँ की खेती सफलता पूर्वक की जाती है। जल निकास की सुविधा होने पर मटियार दोमट तथा काली मिट्टी में भी इसकी अच्छी फसल ली जा सकती है। कपास की काली मृदा में गेहूँ की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। भूमि का पी. एच. मान 5 से 7.5 के बीच में होना फसल के लिए उपयुक्त रहता है, क्योंकि अधिक क्षारीय या अम्लीय भूमि गेहूं के लिए अनुपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी

गेहूँ की बुवाई अधिकतर धान की फसल काट लेने के बाद की जाती है। अतः गेहूँ की बुवाई करने में बहुधा देर हो जाती है। गेहूँ की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए धान की समय से रोपाई करना आवश्यक है,

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), **अपर निदेशक प्रसार, ***वरिष्ठ प्रसार अधिकारी, प्रसार निदेशालय आ.न.दे.कृ.प्रौ.वि.वि. कुमारगंज

जिससे खेत अक्टूबर माह में खाली हो जायें। अच्छे अंकुरण के लिये एक बेहतर भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। समय पर जुताई खेत में नमी संरक्षण के लिए भी आवश्यक है। वास्तव में खेत की तैयारी करते समय हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि बुवाई के समय खेत खरपतवार मुक्त हो, भूमि में पर्याप्त नमी हो तथा मिट्टी इतनी भुरभुरी हो जाये ताकि बुवाई आसानी से उचित गहराई तथा समान दूरी पर की जा सके। खरीफ की फसल काटने के बाद खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल (एमबी प्लाऊ) से करनी चाहिए, जिससे खरीफ फसल के अवशेष और खरपतवार मिट्टी मे दबकर सड़ जायें। इसके बाद आवश्यकतानुसार 2–3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा देकर खेत समतल कर लेना चाहिए। डिस्क हैरो/हैपी सीडर/सुपर सीडर का प्रयोग उस समय और अधिक आवश्यक हो जाता जब धान की कटाई कम्बाइन से की गई हो या खेत में ठूँठ बड़े दिखाई पड़ें, तो ये डिस्क हैरो उनके छोटे– छोटे टुकड़े कर देते है। इन्हें सड़ाने हेतु 15–20 किलोग्राम नत्रजन (यूरिया के रूप में) प्रति हे0 खेत तैयार करते समय पहली जुताई पर अवश्य दे देना चाहिये। खेत की तैयारी ट्रैक्टर चालित रोटावेटर द्वारा एक ही जुताई में पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है।

बुवाई का समय

गेहूँ की बुवाई समय से एवं पर्याप्त नमी पर करना चाहिये। देर से पकने वाली प्रजातियों की बुवाई समय से अवश्य कर देनी चाहिए अन्यथा उपज में कमी हो जाती है। जैसे–जैसे बुवाई में विलम्ब होता जाता है वैसे–वैसे पैदावार में गिरावट होती जाती है। शोधोपरान्त यह पाया गया है कि दिसम्बर में बुवाई करने पर पैदावार 3–4 कुन्तल/हे0 एवं जनवरी में करने से प्रति सप्ताह 4–5 कु0/हे0 की दर से घटोत्तरी होती है। सिंचित दशा में गेहूँ की बुवाई नवम्बर का दूसरा सप्ताह व तीसरे सप्ताह तक तथा देर से बुवाई दिसम्बर का प्रथम पखवाड़ा तक अवश्य कर देनी चाहिए। बुवाई में 30 नवम्बर से अधिक देरी नहीं होना चाहिए। यदि किसी कारण से बुवाई विलंब से करनी हो तब देर से बोने वाली किस्मो को दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक बो जाना चाहिये। देर से बोयी गई फसल को पकने से पहले ही सूखी और गर्म हवा का सामना करना पड़ जाता है जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं तथा उपज कम हो जाती है।

प्रयोगों से यह देखा गया है कि लगभग 15 नवम्बर के आसपास गेहूँ बोये जाने पर अधिकतर बौनी किस्में अधिकतम उपज देती है। असिंचित अवस्था में बोने का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु समाप्त होते ही मध्य अक्टूबर के लगभग है। अर्धसिंचित अवस्था मे जहाँ पानी सिर्फ 2–3 सिंचाई के लिये ही उपलब्ध हो, वहाँ बोने का उपयुक्त समय 25 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक है।

बीज की मात्रा

चुनी हुई किस्म के बड़े–बड़े साफ, स्वस्थ्य और विकार रहित दाने, जो किसी उत्तम फसल से प्राप्त कर सुरंक्षित स्थान पर रखे गये हों, उत्तम बीज होते है। बीज दर भूमि मे नमी की मात्रा, बोने की विधि तथा किस्म पर निर्भर करती है। बौने गेहूँ की खेती के लिए बीज की मात्रा देशी गेहूँ से अधिक होती है। बौने गेहूँ के लिए 100–120 किग्रा प्रति हेक्टेयर तथा देशी गेहूँ के लिए 70–90 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई करनी चाहिये। असिंचित गेहूँ के लिए बीज की मात्रा 100 किलो प्रति हेक्टेयर व कतारों के बीच की दूरी 22–23 सेमी. होनी चाहिये। समय पर बोये जाने वाले सिंचित गेहूँ में बीज दर 100–125 किलो प्रति हेक्टेयर व कतारो की दूरी 20–22.5 सेमी. रखनी चाहिए। देर वाली सिंचित गेहूँ की बुवाई के लिए बीज दर 125–150 किग्रा प्रति हेक्टेयर तथा पंक्तियों के मध्य 15–18 सेमी. का अन्तरण रखना उचित रहता है। बीज को रात भर पानी में भिगोकर बोना लाभप्रद है। भारी चिकनी मिट्टी में नमी की मात्रा आवश्यकता से कम या अधिक रहने तथा बुवाई में बहुत देर हो जाने पर अधिक बीज बोना चाहिए। मिट्टी के कम उपजाऊ होने या फसल पर रोग या कीटो से आक्रमण की सम्भावना होने पर भी बीज अधिक मात्रा में डाले जाते है।

प्रयोगों में यह देखा गया है कि पूर्व–पश्चिम व उत्तर–दक्षिण क्रास बुवाई करने पर गेहूँ की अधिक उपज प्राप्त होती है। इस विधि में कुल बीज व खाद की मात्रा, आधा–आधा करके उत्तर–दक्षिण और

पूर्व–पश्चिम दिशा में बुवाई की जाती है। इस प्रकार पौधे सूर्य की रोशनी का उचित उपयोग प्रकाश संश्लेषण में कर लेते है, जिससे उपज अधिक मिलती है। गेहूँ मे प्रति वर्गमीटर 400–500 बालीयुक्त पौधे होने से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

बुवाई के लिए जो बीज इस्तेमाल किया जाता है वह रोग मुक्त, प्रमाणित तथा क्षेत्र विशेष के लिए अनुशंषित उन्नत किस्म का होना चाहिए। रोगों की रोकथाम के लिए ट्राइकोडर्मा की 04 ग्राम मात्रा 01 ग्राम कार्बेन्डाजिम के साथ प्रति किग्रा बीज की दर से बीज शोधन किया जा सकता है।

बुवाई की विधियां

बुवाई कूड़ों में 5 सेमी. की गहराई पर सामान्य दशा में तथा विलम्ब से बुवाई की दशा में गहराई 4 सेमी. मीटर रखनी चाहिए। बुवाई हल के पीछे कूड़ों मे या फर्टी सीडड्रिल द्वारा भूमि की उचित नमी पर करें। पलेवा करके ही गेहूँ की बुवाई करना श्रेयस्कर होता है। विलम्ब से बचने के लिए जीरोटिल बीज व खाद ड्रिल से बुवाई करना लाभदायक सिद्ध हुआ है।

आमतौर पर गेहूँ की बुवाई चार विधियों से (छिटककर, कूड़ में चोगे या सीड ड्रिल से तथा डिबलिंग) से की जाती है। गेहूँ बुवाई हेतु स्थान विशेष की परिस्थिति अनुसार विधियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैः

बुवाई की विधियां

बुवाई कूड़ों में 5 सेमी. की गहराई पर सामान्य दशा में तथा विलम्ब से बुवाई की दशा में गहराई 4 सेमी. मीटर रखनी चाहिए। बुवाई हल के पीछे कूड़ों मे या फर्टी सीडड्रिल द्वारा भूमि की उचित नमी पर करें। पलेवा करके ही गेहूँ की बुवाई करना श्रेयस्कर होता है। विलम्ब से बचने के लिए जीरोटिल बीज व खाद ड्रिल से बुवाई करना लाभदायक सिद्ध हुआ है।

आमतौर पर गेहूँ की बुवाई चार विधियों से (छिटककर, कूड़ में चोगे या सीड ड्रिल से तथा डिबलिंग) से की जाती है। गेहूँ बुवाई हेतु स्थान विशेष की परिस्थितिनुसार नवीनतम विधियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैः

शून्य कर्षण सीड ड्रिल विधि

धान की कटाई के उपरांत किसानों को रबी की फसल गेहूँ के लिए खेत तैयार करने पड़ते हैं। गेहूँ के लिए किसानों को अमूमन 5–7 जुताइयां करनी पड़ती हैं। ज्यादा जुताइयों की वजह से किसान समय पर गेहूँ की बुवाई नहीं कर पाते, जिसका सीधा असर गेहूँ के उत्पादन पर पड़ता है। इसके अलावा इसमें लागत भी अधिक आती है। ऐसे में किसानों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। शून्य कर्षण से किसानों का समय तो बचता ही है, साथ ही लागत भी कम आती है, जिससे किसानों का लाभ काफी बढ़ जाता है। इस विधि के माध्यम से खेत की जुताई और बिजाई दोनों ही काम एक साथ हो जाते हैं। इससे बीज भी कम लगता है और पैदावार करीब 15 प्रतिशत बढ़ जाती है। खेत की तैयारी में लगने वाले श्रम व सिंचाई के रूप में भी करीब 15 प्रतिशत बचत होती है। इसके अलावा खरपतवार का प्रकोप भी कम होता है, जिससे खरपतवारनाशकों का खर्च भी कम हो जाता है। समय से बुवाई होने से पैदावार भी अच्छी होती है।

फर्ब विधि

इस विधि में सिंचाई जल बचाने के उद्देश्य से ऊँची उठी हुई क्यारियाँ तथा नालियाँ बनाई जाती है। क्यारियो की चौड़ाई इतनी रखी जाती है कि उस पर 2–3 कूड़े आसानी से बुवाई की जा सके तथा नालियाँ सिंचाई के लिए प्रयोग में ली जाती है। इस प्रकार लगभग आधे सिंचाई जल की बचत हो जाती है। इस विधि में सामान्य प्रचलित विधि की तुलना में उपज अधिक प्राप्त होती है। इसमें ट्रैक्टर चालित यंत्र से बुवाई की जाती है। यह यंत्र क्यारियाँ बनाने, नाली बनाने तथा क्यारी पर कूंड़ो में एक साथ बुवाई करने का कार्य करता है।

हैप्पी सीडर

धान की कटाई के बाद पुआल/पराली को बिना खेतों से निकाले गेंहूँ की बुवाई हैप्पी सीडर मशीन द्वारा की जा सकती है। इस मशीन से धान की पराली को बिना जलाये ही गेंहूँ की बुवाई हो जाती है। हैप्पी सीडर पुआल/पराली संभालने वाला रोटर व जीरो सीड ड्रिल का मिश्रण है। इसमें रोटर धान के पुआल को दबाने का कार्य करता है और जीरो टिल ड्रिल गेंहूँ की बुवाई प्रक्षेत्र में टाइन द्वारा चीरा लगाकर करता है।

इस मशीन में फ्लेल किस्म के ब्लेड लगे रहते है जो कि ड्रिल के फाल के सामने आने वाले पुआल को काटकर पीछे ढकेलते है, इससे फालों/टाइनों में पुआल नही फंसता है और बीज सुचारू रूप से गिरता है। यह मशीन एक दिन में 6–8 एकड़ प्रक्षेत्र में बिजाई कर सकती है।

सुपर सीडर

धान की कटाई के बाद खेतों में बचने वाली पराली जलाना समस्या बन गई है। इसके धुएं के कारण सितंबर से दिसंबर के बीच स्मॉग (स्मोक+फॉग) (धुएं व कोहरे का मिश्रण) छा जाता है और वायु गुणवत्ता सूचकांक खराब से बेहद खराब की श्रेणी में पहुंच जाता है। इससे लोगों का सांस लेना भी दूभर हो जाता है। सुपर सीडर मशीन एक मल्टी टास्किंग मशीन है। ये मशीन बुवाई, जुताई, मल्चिंग और खाद फैलाने का काम एक साथ कर देती है। आसान शब्दों में कहें तो इस मशीन के इस्तेमाल से खेती के काम बेहद आसान हो जाते हैं। इसके अलावा सुपर सीडर खेत को तैयार करने में लगने वाले समय को कम देता है और लागत को घटा देता है। इससे किसानों के समय और पैसे दोनों की बचत हो जाती है। यही नहीं, सुपर सीडर पराली को जलाए बिना नष्ट कर देती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि सुपर सीडर के इस्तेमाल से पराली प्रबंधन आसानी से किया जा सकता है।

उर्वरक प्रबन्ध

फसल की प्रति इकाई पैदावार बहुत कुछ खाद एवं उर्वरक की मात्रा पर निर्भर करती है। गेहूँ में हरी खाद, जैविक खाद एवं रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाता है। खाद एवं उर्वरक की मात्रा गेहूँ की किस्म, सिंचाई की सुविधा, बोने की विधि आदि कारकों पर निर्भर करती है। अच्छी उपज लेने के लिए भूमि में कम से कम 35–40 क्विंटल गोबर की अच्छे तरीके से सड़ी हुई खाद 50 किलो ग्राम नीम की खली और 50 किलो अरंडी की खली आदि इन सब खादों को अच्छी तरह मिलाकर खेत में बुवाई से पहले इस मिश्रण को समान मात्रा में बिखेर लें। इसके बाद खेत में अच्छी तरह से जुताई कर खेत को तैयार करें इसके उपरांत बुवाई करे।

मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित मात्रा में उर्वरकों का बुवाई के समय तथा सिंचाई के बाद प्रयोग किया जाय। रासायनिक उर्वरको में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश मुख्य है। सिंचित गेहूँ में (बौनी किस्में) समय से बोने की दशा में 125 किलो नाइट्रोजन, 50 किलो फासफोरस व 40 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिये। देशी किस्मों में 60:30:30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर के अनुपात में उर्वरक देना चाहिए। एक तिहाई नत्रजन, सम्पूर्ण फास्फोरस व पोटाश बुवाई के समय तथा 2/3 नत्रजन प्रथम सिंचाई के बाद देना उपयुक्त होता है। असिंचित गेहूँ की देशी किस्मों में 40 किलो नाइट्रोजन, 30 किलो फास्फोरस व 20 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय हल की तली में देना चाहिये। बौनी किस्मों में 60:40:30 किलों के अनुपात में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश बुवाई के समय देना लाभप्रद पाया गया है।

सिंचाई प्रबन्धन

गेहूँ की बौनी किस्मों से अधिकतम उपज के लिए सिंचाई आवश्यक है। गेहूँ की बौनी किस्मों को 30–35 हेक्टेयर सेमी. और देशी किस्मों को 15–20 हेक्टेयर सेमी. पानी की कुल आवश्यकता होती है। उपलब्ध जल के अनुसार गेहूँ में सिंचाई क्यारियाँ बनाकर करनी चाहिये। प्रथम सिंचाई में औसतन 5 सेमी. तथा बाद की सिंचाईयों में 7.5 सेमी. पानी देना चाहिए। सिंचाईयो की संख्या और पानी की मात्रा मृदा के प्रकार, वायुमण्डल का तापक्रम तथा बोई गई किस्म पर निर्भर करती है। फसल अवधि की कुछ विशेष क्रान्तिक अवस्थाओं पर बौनी किस्मों में सिंचाई करना आवश्यक होता है। सिंचाई की ये क्रान्तिक अवस्थाएँ निम्न हैं –

- पहली सिंचाई शीर्ष जड़ प्रवर्तन अवस्था पर अर्थात बोने के 20 से 25 दिन पर सिंचाई करना चाहिये। लम्बी किस्मों में पहली सिंचाई सामान्यतः बोने के लगभग 30–35 दिन बाद की जाती है।
- दूसरी सिंचाई दोजियां निकलने की अवस्था अर्थात बुवाई के लगभग 40–50 दिन बाद।
- तीसरी सिंचाई सुशांत अवस्था अर्थात बुवाई के लगभग 60–70 दिन बाद।

- चौथी सिंचाई फूल आने की अवस्था अर्थात बुवाई के 80–90 दिन बाद।
- दूध बनने तथा शिथिल अवस्था अर्थात बोने के 100–120 दिन बाद।

पर्याप्त सिंचाईयां उपलब्ध होने पर बौने गेहूँ में 4–6 सिंचाई देना श्रेयस्कर होता है। यदि मिट्टी काफी हल्की या बलुई है तो 2–3 अतिरिक्त सिंचाईयो की आवश्यकता हो सकती है। सीमित मात्रा में जलापूर्ति की स्थिति में सिंचाई का निर्धारण निम्नानुसार किया जाना चाहिएः

- यदि केवल दो सिंचाई की ही सुविधा उपलब्ध है, तो पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद (शीर्ष जड़ प्रवर्तन अवस्था) तथा दूसरी सिंचाई फूल आने के समय बोने के 80–90 दिन बाद करनी चाहिये।
- यदि पानी तीन सिंचाइयों हेतु उपलब्ध है तो पहली सिंचाई शीर्ष जड़ प्रवर्तन अवस्था पर (बुवाई के 20–22 दिन बाद)। दूसरी तने में गाँठें बनने (बोने क 60–70 दिन बाद) व तीसरी दानो में दूध पड़ने के समय (100–120 दिन बाद) करना चाहिये।

गेहूँ की देशी लम्बी बढ़ने वाली किस्मों में 1–3 सिंचाईयाँ करते हैं। पहली सिंचाई बोने के 20–25 दिन बाद, दूसरी सिंचाई बोने के 60–65 दिन बाद और तीसरी सिंचाई बोने के 90–95 दिन बाद करते हैं। असिंचित अवस्था में मृदा नमी के प्रबन्धन हेतु खेत की जुताई कम से कम करनी चाहिए तथा प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाना चाहिए। जुताई का कार्य प्रातः व सायंकाल में करने से वाष्पीकरण द्वारा नमी का ह्रास कम होता है। खेत की मेड़बन्दी अच्छी प्रकार से कर लेनी चाहिए, जिससे वर्षा के पानी को खेत में ही संरक्षित किया ता सके। बुवाई पंक्तियों में 5 सेमी. गहराई पर करना चाहिए। खाद व उर्वरकों की पूरी मात्रा, बोने के पहले कूड़ों में 10–12 सेमी. गहराई में दें। खरपतवारों पर समयानुसार नियंत्रण करना चाहिए।

खरपतवार प्रबन्धन

गेहूँ के साथ अनेक प्रकार के खरपतवार भी खेत में उगकर पोषक तत्वों, प्रकाश, नमी आदि के लिए फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते है। यदि इन पर नियंत्रण नही किया गया तो गेहूँ की उपज मे 10–40 प्रतिशत तक हानि संभावित है। बुवाई से 30–40 दिन तक का समय खरपतवार प्रतिस्पर्धा के लिए अधिक क्रांतिक रहता है। गेहूँ के खेत में चौड़ी पत्ती वाले और घास कुल के खरपतवारों का प्रकोप होता है।

गेहूँ के खेत में सॅकरी पत्ती के खरपतवार जैसे – गेहूँ का मामा (गेहूँसा), जंगली जई, दूब, राई घास आदि पाये जाते है। चौड़ी पत्ती खरपतवार जैसे – बथुआ, हिरनखुरी, गजरी, प्याजी, कृष्णनील, चटरी–मटरी व सत्यानाशी आदि खरपतवार प्रमुख रूप से पाये जाते हैं।

प्रायः खरपतवारनाशी द्वारा खरपतवार नियंत्रण को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि इससे मजदूरी कम लगती है तथा दूसरे पौधे टूटते नहीं हैं जैसा कि यांत्रिक विधि में होता है। खरपतवारनाशी रसायनों से नियंत्रण भी ज्यादा प्रभावी होता है, क्योंकि दवाई से लाईनों के बीच के खरपतवार भी आसानी से नियंत्रित हो जाते है जोकि गेहूँ से मंडूसी की समानता होने के कारण निराई–गुड़ाई के समय छूट जाते हैं। आइसोप्रोटयूरॉन प्रतिरोधी क्षमता वाली खरपतवारों के नियंत्रण के लिए खरपतवार नाशियों को निम्न तरीके से उपयोग में लाना चाहिए।

गेहूँ उगने से पहले

गेहूँ उगने से पहले प्रयोग में लाने वाला खरपतवारनाशी सिर्फ पैंडीमैथालिन 30 ई. सी. है, जिसे 3.3 लीटर (1000 ग्राम सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर की दर से 700–750 लीटर पानी में घोल कर बुआई के 0 से 2 दिन बाद स्प्रे करना चाहिए।

गेहूँ उगने के बाद

पिछले 3–4 वर्षो में कई खरपतवारनाशी ऐसे पाए गये हैं जो मंडूसी की उन प्रजातियों पर भी असरदार है जिन पर आइसोप्रोटयूरॉन का कोई असर नहीं होता। निम्नलिखित खरपतवारनाशियों को गेहूँ बुवाई के 30 से 35 दिन बाद या मंडूसी जब 2 से 3 पत्तों वाली हो तब प्रयोग में लाना चाहिए।

संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

- सल्फोसल्फ्यूरॉन को 33.3 ग्राम/हे0 (25 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से 250–300 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।
- मैट्रिब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी. को 250 ग्राम/हे0 (175

ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से कम से कम 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

- सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 + मैट्रीसल्फ्यूरॉन 5 प्रतिशत की 32 ग्राम/हे0 सक्रिय तत्व (कुल 40 ग्राम/हे0 व्यापारिक मात्रा)।
- मीजोसल्फ्यूरॉन 3 प्रतिशत आइडोसल्फ्यूरॉन 0.6 प्रतिशत की 12 + 2.24 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0 (400 ग्राम/हे0 व्यापारिक मात्रा)।

केवल संकरी पत्ती वाले खरपतवार

- क्लोडीनाफोप 15 डब्ल्यू.पी. का 400 ग्राम/हे0 (60 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से 250–300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- फिनोक्सा प्रोप इथाईल 10 ई.सी. के 800–1200 मिली/हे0 (80–120 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से 250–300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- पिनॉक्साडिन 5.10 ई.सी. के 400–800 मिली/हे0 (35–40 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से 250–300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- ट्रालकोक्सीडीम 10 ई.सी. का 3500 मिली/हे0 (350 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हे0) की दर से 250–300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आंकड़ों के आधार पर इन रसायनों का प्रति हेक्टेयर खर्चा 1400–1600 रूपये आता है।

कटाई–गहाई

जब गेहूँ के दाने पक कर सख्त हो जाय और उनमें नमी का अंश 20–25 प्रतिशत तक आ जाये, फसल की कटाई करनी चाहिये। कटाई हँसिये से की जाती है। बौनी किस्म के गेहूँ को पकने के बाद खेत में नहीं छोड़ना चाहिये, कटाई में देरी करने से दाने झड़ने लगते है और पक्षियों द्वारा नुकसान होने की संभावना रहती है। कटाई के पश्चात् फसल को 2–3 दिन खलिहान में सुखाकर मड़ाई शक्ति चालित थ्रेशर से की जाती है। कम्बाइन हारवेस्टर का प्रयोग करने से कटाई, मड़ाई तथा ओसाई एक साथ हो जाती है परन्तु कम्बाइन हारवेस्टर से कटाई करने के लिए, दानो में 20 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए, क्योकि दानो में ज्यादा नमी रहने पर मड़ाई या गहाई ठीक से नहीं होगी।

उपज एवं भंडारण

उन्नत सस्य तकनीक से खेती करने पर सिंचित अवस्था में गेहूँ की बौनी किस्मो से लगभग 50–60 क्विंटल दाना के अलावा 80–90 क्विंटल भूसा प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है। जबकि देशी लम्बी किस्मों से इसकी लगभग आधी उपज प्राप्त होती है। देशी किस्मों से असिंचित अवस्था में 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। सुरक्षित भंडारण हेतु दानों में 10–12 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होना चाहिए। भंडारण के पूर्व कोठियों तथा कमरो को साफ कर लें और दीवारों व फर्श पर मैलाथियान 50 प्रतिशत के घोल को 3 लीटर प्रति 100 वर्गमीटर की दर से छिड़कें। अनाज को बुखारी, कोठिलों या कमरे में रखने के बाद एल्युमिनियम फास्फाइड 3 ग्राम की दो गोली प्रति टन की दर से रखकर बंद कर देना चाहिए।

ध्यान रखें कीड़े गंदगी से आकर्षित होते हैं, इसलिए गेहूं को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए इसे साफ–सुथरा रखना बहुत जरूरी होता है। साथ ही इसका भंडारण नमी वाली जगह से दूर करें। नीम की पत्तियां नेचुरल रूप से कीटनाशक के रूप में कार्य करती हैं। ऐसे में यदि आप लंबे समय तक गेहूं को स्टोर करके रखना चाहते हैं, तो उसमें नीम की पत्तियों को डाल दें। बेहतर परिणाम के लिए आप गेहूं के डिब्बे में हर 3–4 हफ्ते में नीम की पत्तियों को बदल सकते हैं। लहसुन की तेज गंध के कारण घुन और दूसरे कीड़े अनाज के आसपास नहीं भटकते हैं। ऐसे में यदि आप गेहूं को घर में स्टोर कर रहे हैं, तो इसे कीड़ों से बचाने के लिए इसके डिब्बे में बिना छिले हुए लहसुन को रखें। इसके सूखने पर इसे लगातार बदलते रहें। गेहूं से कीड़े भगाने हेतु माचिस की तीली भी एक बेहतरीन उपाय है। दरअसल, माचिस की तीली में सल्फर होता है और कीड़ों को यह रासायनिक तत्व पसंद नहीं होता है। इसलिए माचिस की तीली को अनाज के पास रखने भर से घुन झटपट गायब होने लगते हैं।

चने की उन्नत खेती

संजीत कुमार*, के0 एम0 सिंह** एवं अभिषेक यादव***

दलहनी फसलों में चना का प्रमुख स्थान है। चना एक शुष्क एवं ठण्डे जलवायु की फसल है जिसे रबी मौसम में उगाया जाता हे। चने की खेती के लिए मध्यम वर्षा (60–90 से.मी. वार्षिक वर्षा) और सर्दी वाले क्षेत्र सर्वाधिक उपयुक्त है। फसल में फूल आने के बाद वर्षा होना हानिकारक होता है, क्योंकि वर्षा के कारण फूल परागकण एक दूसरे से चिपक जाते है जिससे बीज नही बनते है। इसकी खेती के लिए 24–30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। फसल के दाना बनते समय 30 डिग्री सेल्सियस से कम या 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापक्रम हानिकारक रहता है।

भूमिः चने के लिए दोमट से भारी दोमट भूमि जहां पानी के निकास का उचित प्रबन्ध हो, उपयुक्त होती है। चने की खेती दोमट भूमियों से मटियार भूमियों में सफलता पूर्वक किया जा सकता है, किन्तु अधिक जल धारण एवं उचित जल निकास वाली भूमियॉ सर्वोत्तम रहती हैं। मृदा का पी.एच. मान 6–7.5 उपयुक्त रहता है।

भूमि की तैयारीः पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई व दो जुताईयां देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके पाटा लगाकर खेत को तैयार कर लेना चाहिए।

चने की उन्नत प्रजातियाँ –

देशी चना की प्रजातियां–

पूसा 10216, पूसा चना 20211 (पूसा मानव), पूसा 3043, बीजीएम 4005, जी.एन.जी. 1581, जी.एन.जी. 1969, फुले विश्वराज, पूसा 256, करनाल चना 1, जे. जी. 74, जे.जी. 130, जे.जी. 315, बी.जी. 391, विशाल, अवरोधी, पूसा–256, हरिता, जेजी 315, जेजी 12, जे.जी. 130, पूसा 391, दिग्विजय, पूसा–372, उदय, पन्त जी– 186 आदि।

काबुली चना की प्रजातियां–

पूसा काबुली 1003, पी.के.वी. काबुली 4, कोटा काबुली चना–3, पंत काबुली चना 1

एच.के. 94–134, 3. चमत्कार (वी.जी. 1053), जे.जी. के.–1, शुभ्रा, उज्जवल आदि।

बीज दर– छोटे दाने का 75–80 किग्रा. प्रति हे. तथा बड़े दाने की प्रजाति का 90–100 किग्रा./हेक्टर।

बीजोपचार–

राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार–

अलग अलग दलहनी फसलों का अलग अलग राइजोबियम कल्चर होता है चने हेतु राइजोबियम साइसेरी कल्चर का प्रयोग होता है। एक पैकेट 200 ग्राम कल्चर 10 किग्रा बीज उपचार के लिए पर्याप्त होता है। बाल्टी में 10 किग्रा. बीज डालकर अच्छी प्रकार मिला दिया जाता है जिससे सभी बीजों पर कल्चर लग जायें। इस प्रकार राइजोबियम कल्चर से उपचारित हुए बीजों को कुछ देर बाद छाया में सुखा लेना चाहिए और जहां तक सम्भव हो सके बीज उपचार दोपहर के बाद करना चाहिए ताकि बीज शाम को ही बोया जा सके।

बीज शोधनः बीज जनित रोग से बचाव के लिए थीरम 2 ग्राम या मैंकोजेब 2 ग्राम या 4 ग्राम ट्रइाकोडरमा अथवा थीरम 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज को बोने से पूर्व शोधित करना चाहिए।

बुवाईः असिंचित दशा में चने की बुवाई अक्टूॅबर के

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहॉव, बलिया, **वरिष्ठ प्रसार अधिकारी, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या
***विषय वस्तु विशेषज्ञ (कीट/सूत्र कृमि विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहॉव, बलिया

द्वितीय से तृतीय सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए। सिंचित दशा में बुवाई नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक तथा पछेती बुआई दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। बुवाई लाईनों में 6–7 सेमी की गहराई पर करनी चाहिए। लाईन से लाईऩ की दूरी असिंचित तथा पछेती दशा में बुवाई में 20–25 सेमी तथा सिंचित भूमि में 45 सेमी रखनी चाहिए।

उर्वरक: सभी प्रजतियों के लिए 20 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा फास्फोरस, 20 किग्रा पोटाश एवं 20 किग्रा. गन्धक का प्रति हे. की दर से भूमि की तैयारी के समय प्रयोग करना चाहिए। संस्तुति के आधार पर उर्वरक प्रयोग अधिक लाभकारी पाया गया है। असंचित अथवा देर से बुवाई की दशा में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का फूल आने के समय छिड़काव करें।

सिंचाई: प्रथम सिंचाई आवश्यकतानुसार बुआई के 45–60 दिन बाद (फूल आने के पहले) तथा दूसरी फलियों में दाना बनते समय, 75–80 दिन बाद की जानी चाहिए। यदि जाड़े की वर्षा हो जाये तो दूसरी सिंचाई की आवश्यकता नही होगी। फूल आते समय सिंचाई न करें अन्यथा लाभ के बजाय हानि हो जाती है।

फसल सुरक्षा–

(क) खरपतवार नियंत्रण

चने की फसल में अनेक प्रकार के खरपतवार जैसे बथुआ, खरतुआ, मोरवा, प्याजी, मोथा, दूब इत्यादि उगते हैं। ये खरपतवार फसल के पौधों के साथ पोषक तत्वों, नमी, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करके उपज को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त खरपतवारों के द्वारा फसल में अनेक प्रकार की बीमारियों एवं कीटों का भी प्रकोप होता है जो बीज की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि को रोकने के लिए समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है। चने की फसल में दो बार गुड़ाई करना पर्याप्त होता है। प्रथम गुड़ाई फसल बुवाई के 30–35 दिन पश्चात व दूसरी 50–55 दिनों बाद करनी चाहिये। यदि मजदूरों की उपलब्धता न हो तो फसल बुवाई के तुरन्त पश्चात पैन्ड़ीमैथालीन की 2.33 लीटर मात्रा को 600–700 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति है0 की दर से खेत में समान रूप से मशीन द्वारा छिड़काव करना चाहिये। फिर बुवाई के 30–35 दिनों बाद एक गुड़ाई कर देनी चाहिये। इस प्रकार चने की फसल में खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि की रोकथाम की जा सकती है।

(ख) प्रमुख कीट

1. कटुआ कीट,
2. अर्द्धकुण्डलीकार कीट (सेमी लूपर)
3. फली बेधक कीट–

नियंत्रण के उपाय–

1. गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए।
2. समय से बुवाई करनी चाहिए।
3. खेत में जगह–जगह सूखी घास के छोटे छोटे ढेर को रख देने से दिन में कटुआ कीट की सूड़ियॉ छिप जाती है जिसे प्रातः काल इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।
4. खेत के चारो ओर गेंदे के फूल को ट्रैप क्राप के रूप में प्रयोग करना चाहिए।
5. यदि कीट का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर पार कर गया हो तो निम्न कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए, कटुआ चने की फसल को कटुआ अत्यधिक नुकसान पहुँचाता है। इसकी रोकथाम के लिए 20 कि. ग्रा./हे. की दर से क्लोरापायरीफॉस भूमि में मिलाना चाहिए।
6. फली छेदक इसका प्रकोप फली में दाना बनते समय अधिक होता हैं, नियंत्रण नही करने पर उपज में भारी कमी आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए ऐसीटाम्प्रिड 500 मिली. की दर से 600–800 ली. पानी में घोलकर फली आते समय फसल पर छिड़काव

करना चाहिए।

7. इमामेकटीन 0.02 प्रतिशत के हिसाब पहली बार फूल खिलने के प्रारंभिक अवस्था में और दूसरी बार 15 दिनों के पश्चात् छिड़काव से फली छेदक का प्रकोप रूक जाता है।

(ग) रोग नियंत्रण

जड़ सड़न रोग : बुआई के 15–20 दिन बाद पौधा सूखने लगता है। पौधे को उखाड़ कर देखने पर तने पर रूई के समान फफूँदी लिपटी हुए दिखाई देती है। इसे अगेती जड़ सड़न कहते हैं। इस रोग का प्रकोप अक्टूबर से नवम्बर तक होता है। पछेती जड़ सड़न में पौधे का तना काला होकर सड़ जाता है तथा तोड़ने पर आसानी से टूट जाता है। इस रोग का प्रकोप फरवरी एवं मार्च में अधिक होता है।

उकठा रोग : इस रोग में पौधे धीरे–धीरे मुरझाकर सूख जाते हैं। पौधे को उखाड़ कर देखने पर उसकी मुख्य जड़ एवं उसकी शाखायें सही सलामत होती है। छिलका भूरा रंग का हो जाता हैं तथाा जड़ को चीर कर देखें तो उसके अन्दर भूरे रंग की धारियाँ दिखाई देती है। उकठा का प्रकोप पौधे के किसी भी अवस्था में हो सकता है।

पत्ती धब्बा रोग : इस रोग में पत्तियों एवं फलियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल परिस्थिति में धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे पूरी पत्ती झुलस जाती है।

प्रबन्धन के उपाय :

(क) गर्मियों में मिट्टी पलट हल से जुताई करने से मृदा जनित रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है।

(ख) जिस खेत में प्रायः उकठा लगता हो तो यथा सम्भव उस खेत में 3–4 वर्ष तक चने की फसल नहीं लेनी चाहिए।

(ग) अगेती जड़ सड़न से बचाव हेतु नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में बुआई करनी चाहिए।

(घ) उकठा रोग निरोधक किस्मों जैसे–जे.जी. 12, जे. जी. 130, आदि का प्रयोग करना चाहिए। प्रभावित क्षेत्रो में फल चक्र अपनाना लाभकर होता है प्रभावित पौधा को उखाडकर नष्ट करना अथवा गढ्ढे में दबा देना चाहिए। बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम या ट्राइकोडर्मा विरडी 4 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिए।

(ड.) बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु थीरम 75 प्रतिशत+कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत (2:1) 3.0 ग्राम अथवा ट्राइकोडरमा 4.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से शोधित कर बुआई करना चाहिए।

(च) भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु बायोपेस्टीसाइड (जैव कवकनाशी) ट्राइकोडरमा विरिडी 1 प्रतिशत डब्लू.पीअथवा ट्राइकोडरमा हारजिएनम 2 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2.5 किग्रा. प्रति हे. 60–75 किग्रा. सड़ी हुए गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुआई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देने से चना के बीज/भूमि जनित रोगों का नियंत्रण हो जाता है।

(छ) पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 75 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा. अथवा कापर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्लू.पी. की 3.0 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से लगभग 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई–मढ़ाई: जब फलियॉ सुनहरे रंग की जो जायें, फसल को काट कर सुखाकर व मड़ाई करके बीज अलग करना चाहिए। देर करने से बीजों के झड़ने की आशंका रहती हे। बीज को खूब सुखाकर (12–14 प्रतिशत नमी पर) ही भण्डारण करना चाहिए।

पैदावार : वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर सिंचितं दशा में 30–35 कु0/हे0 तथा असिंचितं दशा में 15–18 कु0/हे0 उपज प्राप्त की जा सकती है।

रबी फसलों की प्रमुख प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ

अखिलेश कुमार यादव*, के.एम. सिंह** एवं डी.के. सिंह***

किसी भी फसल के उत्पादन में उन्नतशील प्रजातियों एवं उन्नत सस्य क्रियाओं का विशेष महत्व होता है, क्योंकि केवल उन्ननशील प्रजातियों के प्रमाणित बीज के प्रयोग से ही बिना कुछ अतिरिक्त लागत के हम अपने उत्पादन को बढ़ा सकते है, हरित क्रान्ति के दौरान फसल उत्पादन को बढ़ाने में उन्नतशील प्रजातियों का अहम योगदान रहा है, रबी सीजन की मुख्य फसलों की प्रमुख प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ निम्नवत है–

क्र.सं	प्रजाति	नोटीफिकेशन वर्ष	उत्पादकता कु./हे.	पकने की अवधि (दिन)	विशेषताएँ
गेहूँ (असिंचित दशा)					
1.	एन.डब्ल्यू. 4018	2014	21–25	126–128	सामान्य अवस्था में सभी रस्ट के प्रति अवरोधी
2.	एच.डी. 1612	2018	37.6	125	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी, ताप सहिष्णु
3.	एच.यू.बी. 669	2018	25–30	130	सभी रस्ट एवं लीफ रस्ट अवरोधी
4.	एच.डी. 3237	2019	48.4	145	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी, अच्छी चपाती क्वालिटी
5.	के.1317	–	35–45	121	पीला, भूरा एवं काला रस्ट अवरोधी तथा उच्च ताप सहिष्णु
सिंचित दशा (समय से बुवाई)					
1.	डी.बी.डब्ल्यू. 187 (करन बंदना)	2019	48.8	120	बायोफोर्टीफाईड– आयरन 43.1 पीपीएम, पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी
2.	एच.डी. 3226 (पूसा यशस्वी)	2019	57.5	142	स्ट्रिप लीफ, करनल बंट एवं ब्लैक रस्ट एवं फुटराट के प्रति उच्च अवरोधी
3.	एच.डी. 3171	2017	28	130–140	सभी रस्ट के प्रति अवरोधी, बायोफोर्टीफाईड (जिंक 47.1 पीपीएम
4.	एच.आई. 8759 (पूसा तेजस)	2017			बायोफोर्टी फाईड (प्रोटीन–12.5 प्रतिशत, आयरन 41.1 पीपीएम, जिंक 42.8 पीपीएम)
5.	डी.बी.डब्ल्यू. 222	2020	61.3	143	स्ट्रिप लीफ रस्ट अवरोधी
6.	पूसा गेहूँ 3249	2020	48–50	120–125	लीफ ब्लाइट एवं भूरा रस्ट अवरोधी, जिंक 42.5 पीपीएम
7.	एच.आई. 1612	2018	35–40	120–125	पीला रस्ट अवरोधी
8.	पी.बी.डब्ल्यू. 723 (उन्नत 343)	2017	49.2	126–134	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (जीपीबी.), **वरिष्ठ प्रसार अधिकारी, ***प्रभारी अधिकारी, (के.वी.के., कोटवा, आजमगढ़, आ.न.दे.कृ. एवं प्रौ.वि.वि. अयोध्या, उ.प्र.)

9.	एन.डब्ल्यू. 5054	2014	55–60	122–124	रस्ट एवं झुलसा अवरोधी
10.	एच.डी. 2967	2014	50.4	143	रस्ट अवरोधी
11.	एच.डी. 3086	2014	54.6	143	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी देर से बुवाई की दशा
1.	ए.ए.आई.डब्ल्यू. 06	2014	35–40	110–115	लीफ रस्ट अवरोधी
2.	एच.डी. 3118	2015	41.7	109–120	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी
3.	डब्ल्यू.एच. 1124	2015	42.7	123	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी, ताप सहिष्णु
4.	एच.डी. 2985 (पूसा बसन्त)	2011	37.7	105–110	लीफ रस्ट, बिस्किट एवं चपाती योग्य
5.	पी.बी.डब्ल्यू. 752	2019	49.7	120	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी, बायोफोर्टीफाईड (प्रोटीन 12.4%)
6.	डी.बी.डब्ल्यू 173	2018	47.2	122	पीला एवं भूरा रस्ट अवरोधी, बायोफोर्टी फाईड (प्रोटीन– 12.5%, आयरन 40.7 पीपीएम)
7.	नरेन्द्र गेहूँ 2036	2002	45–50	110–115	रतुआ, झुलसा एवं करनल बंट, लवण सहिष्णु
जौ की उन्नतशील प्रजातियाँः					
1.	डी.डब्ल्यू.आर. बी. 137	2018	42.49	113–115	पीला रस्ट अवरोधी
2.	के.1055 (प्रखर)	2018	42–47	132	पीला, भूरा एवं काला रस्ट अवरोधी
3.	आर.डी. 2907	2018	35.54	124	पीला रस्ट, लवण अवरोधी
4.	महामना 113	2014	43.20	116–121	–
5.	एन.डी.बी. 1173	2005	35–45	115–120	सिंचित, असिंचित, समस्याग्रस्त एवं ऊसर क्षेत्रों हेतु उपयुक्त
6.	एन.डी.बी. 1445	2014	30–35	125–128	सिंचित, असिंचित, समस्याग्रस्त एवं ऊसर क्षेत्रों हेतु उपयुक्त
छिलका रहित प्रजातियाँ					
1.	नरेन्द्र जौ 5	2008	35–45	115	समस्याग्रस्त मृदा में संतोषजनक उपज
2.	डीडब्ल्यूआरयूबी 64	2012	40–42	116	–
3.	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73	2011	38.70	110–118	लीफ रस्ट अवरोधी
चने की उन्नतशील प्रजातियाँः समय से बुवाई					
1.	के.जी.डी. 1168	1997	25–30	150–155	उकठा अवरोधी
2.	जाकी 9218	2008	18–20	125	विल्ट, रूट रॉट एवं कालर रॉट अवरोधी
3.	सी एस जे 515 (अमन)	2016	24.0	135	जड़ सडन, विल्ट, कालर रॉट मध्यम अवरोधी
4.	पन्त चना 5	2017	20–22	125–130	फ्यूजेरियम विल्ट सहिष्णु
5.	जी एन जी 2171	2017	20.14	163	फ्यूजेरियम विल्ट सहिष्णु
6.	आई पी सी –2004–98		2020	20–22	130–135उकठा अवरोधी

7.	बी.जी. 3043	2018	20–22	135–140	देशी प्रजाति, मध्यम आकार
देर से बुवाईः					
1.	आरवीजी 202	2015	20.0	102	रूट रॉट एवं कालर रॉट मध्यम अवरोधी
2.	आरवीजी 203	2012	19	100	विल्ट, ड्राई रूट रॉट अवरोधी
3.	आरवीजी 2005–62	2020	20–22	120	उकठा अवरोधी, अधिक प्रोटीन
4.	आईपीसी 2006–77	2019	20–25	115–120	उकठा अवरोधी
5.	जीएनजी 2207 (अवध)	2018	20–22	135–140	–
मटर की प्रजातियाँः					
1.	आई पी एफ– 16–13	2019	18–19	115–120	पाउडरी मिल्ड्यू एवं रस्ट अवरोधी
2.	आई पी एफ डी– 9–2	2018	15–20	120–125	बुकनी रोग अवरोधी
3.	पन्त पी– 250	2017	23–24	120–125	बुकनी रोग अवरोधी
4.	आई पी एफ डी– 6–3	2016	19–20	110–115	पाउडरी मिल्ड्यू एवं रस्ट मध्यम अवरोधी
5.	दांतीवाडा फील्ड पी–1	2011	17–20	120–125	बुकनी रोग अवरोधी
मसूर की उन्नतशील प्रजातियांः					
1.	आई.पी.एल. 315	2019	12–13	129–138	रस्ट अवरोधी, विल्ट सहिष्णु
2.	आई.पी.एल. 321	2019	14–18	123–138	रस्ट एवं विल्ट सहिष्णु, फल भेदक कीट एवं एफिड सहिष्णु
3.	आई.पी.एल. 220	2018	14–15	119–122	रस्ट एवं फ्यूजेरियम विल्ट अवरोधी बायोफोर्टीफाईड (जिंक– 51 पीपीएम, आयरन 73 पीपीएम)
4.	के.एल.एस. 1322 (शेखर 5)	2018	16–20	105–115	रस्ट एवं विल्ट अवरोधी
5.	के.एल.बी. 345 (शेखर 4)	2018	18–20	111	रस्ट एवं विल्ट अवरोधी
6.	आई.पी.एल. 526	2016	10–12	101–110	रस्ट एवं विल्ट सहिष्णु
7.	के.एल.बी. 2008–4 (कराती)	2015	18–20	115–120	विल्ट अवरोधी
सरसों की प्रजातियाँः					
1.	नरेन्द्र राई 8501	1990	25–30	125–130	सम्पूर्ण उ.प्र.
2.	पूसा डबल जीरो अ 31	2016	23–25	142	बायोफोर्टीफाईड (इरुसिक एसिड 2% से कम एवं ग्लूकोसायनोलेट्स 30 पीपीएम से कम)
3.	गिरिराज	2013	22–27	137–153	तेल की मात्रा अधिक
4.	आज़ाद महक	2020	20–22	140	उच्च ताप सहिष्णु
5.	सी एस 58	2017	20–22	138	ऊसर क्षेत्र में
6.	सी एस 60	2018	20–22	125–129	ऊसर क्षेत्र में

चुकंदर की वैज्ञानिक खेती

निहारिका सिंह*, सी० एन० राम** एवं अखिल कुमार चौधरी*

चुकंदर पोषण से भरपूर एक जड़ बाली सब्जी है जिसे बीटा बल्गेरिस रूद्रा या लाल चुकंदर के नाम से भी जाना जाता है। इसमें कैल्शियम, आयरन, विटामिन ए, विटामिन सी, फोलिक एसिड, फाइबर, मैंगनीज और पोटेशियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है। चुकंदर का शुमार मीठी सब्जियों में किया जाता है। चुकंदर में मौजूद एंटी ऑक्सीडेंट लाल तत्व में कैंसर रोधी क्षमता होती है।

इतना ही नहीं यह हृदय की बीमारियों में भी कारगर माना जाता हैं। चुकंदर में औषधीय गुण खूब पाए जाते हैं। चुकंदर ब्लड प्रेशर और बजन कम करने के साथ–साथ पाचन तंत्र को सुचारू रूप से चलाने में काफी मदद करता है। चुकंदर में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट कैंसर जैसी घातक रोगों में काम आता है। यह हृदय रोग, खून की कमी आदि के रोगों में भी फायदेमंद है। इसे फल, सलाद, सब्ज़ी, आचार या जूस के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। ठंड के मौसम में इसकी डिमांड सबसे ज़्यादा होती है। ऑर्गेनिक फार्मिंग के इस दौर में लोग फिर से धीरे–धीरे पौष्टिक आहार का रुख कर रहे हैं, चुकंदर के गुणों के कारण ही इसकी बाजार मांग अच्छी बनी रहती है, इसलिए चुकंदर की खेती करके आप अच्छी कमाई कर सकते हैं।

औषधीय गुण

चुकंदर की पत्तियाँ और जड़ें पोषण से भरपूर होती हैं, जिसमें एंटीऑक्सीडेंट शामिल हैं जो कोशिका क्षति से लड़ते हैं और हृदय रोग के जोखिम को कम करते हैं। वे उन कुछ सब्जियों में से एक हैं जिनमें बीटालेन होता है, एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट जो चुकंदर को उसका चमकीला रंग देता है। बीटालेन सूजन को कम करता है और कैंसर और अन्य बीमारियों से बचाने में मदद कर सकता है।

सहनशक्ति बढ़ाता है

चुकंदर और इसका जूस व्यायाम के दौरान आपके दिल और फेफड़ों को बेहतर ढंग से काम करने में मदद करता है। चुकंदर से मिलने वाला नाइट्रिक ऑक्साइड आपकी मांसपेशियों में रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है।

हृदय रोग और स्ट्रोक को रोकने में मदद करता है

चुकंदर में फोलेट (विटामिन बी 9) भरपूर मात्रा में होता है, जो कोशिकाओं को बढ़ने और काम करने में मदद करता है। फोलेट रक्त वाहिकाओं को होने वाले नुकसान को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे हृदय रोग और स्ट्रोक की संभावना कम हो सकती है।

निम्न रक्तचाप

चुकंदर में प्राकृतिक रूप से नाइट्रेट्स की मात्रा अधिक होती है, जो शरीर में जाकर नाइट्रिक ऑक्साइड में बदल जाता है। यह यौगिक रक्त वाहिकाओं को शिथिल और चौड़ा करके रक्तचाप को कम करता है।

त्वचा के लिए चुकंदर के फायदे

शोध से पता चलता है कि चुकंदर का जूस पीने से सूजन और रक्त प्रवाह में सुधार हो सकता है, जो त्वचा के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।

चुकंदर की प्रजातियां

डेट्रॉइट डार्क रेड– इस नस्ल के चुकंदर का गूदा खून की तरह लाल रंग का होता है। सतह चिकनी और गाठें लाल रंग की होती है। पत्तियां हरी और लम्बी होने के साथ ही मैरून रंग के आंशिक प्रभाव वाली होती है। ज्यादा उत्पादन के लिए यह प्रजाति मशहूर है।

*शोध छात्र, **प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

मिश्र की क्रॉस्वी–चपटी जड़ों के साथ चिकनी सतह बाली इस प्रजाति का आंतरिक रंग गहरा बैंगनी लाल होता है। इस प्रजाति को तैयार करने में 55 से 60 दिनों का समय लगता है।

क्रिमसन ग्लोब–चुकंदर की यह प्रजाति सामान्यतः चपटी होने के साथ जड़ों का रंग मध्यम लाल होता है। इस नस्ल का गूदा भी माध्यम लाल रंग का ही होता है। ज्यादा उत्पाद के लिए किसान क्रिमसन ग्लोव उगा सकते हैं।

अर्ली वंडर–जड़ें चपटी, चिकनी होने के साथ ही लाल सतह बाली होती हैं। इसकी भीतरी सतह भी लाल होने के साथ ही पत्तियां हरे रंग की होती हैं। इस प्रजाति को तैयार होने के लिए 55 से 60 दिन तक का समय लगता है।

चुकन्दर की खेती हेतु अनुकूल मौसम

चुकंदर को उगाने के लिए ठंडे मौसम की आवश्यकता होती है। इसे साल भर उगाया जा सकता है । ठंडे मौसम में उगायी गयी फसल में जड़ें मजबूत होती हैं, और इन फसलों में शक्कर की मात्रा भी भरपूर होती है। इसका सबसे अच्छा रंग, बनावट और गुणवत्ता ठंडे मौसम की स्थिति में ही प्राप्त होती है। लेकिन इसे हल्की गर्म जलबायु में भी उगाया जा सकता है। चुकंदर की खेती के लिए 18– 21 डिग्री सेल्सियस का तापमान आदर्श माना जाता है।

चुकंदर की खेती हेतु मिट्टी की तैयारी

चुकंदर कई किस्म की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। बलुई, टोमट मिट्टी में बेहतर पैदावार होती है। चुकंदर को उगाने के लिए 6.3 से 7.5 पीएच वाली मिट्टी आदर्श मानी जाती है। चुकंदर के लिए उपजाऊ मिट्टी का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रहे कि क्षारीय मिट्टी चुकंदर की फसल को प्रभावित कर सकती है। चुकंदर बोए जाने वाली मिट्टी मुलायम होनी चाहिए जिसमें बालू की मात्रा संतुलित हो ।

चुकंदर की बुवाई

चुकंदर के बीजी की रोपाई के लिए ठंडी जलवायु उचित मानी जाती है, इसके लिए इसके बीजो की रोपाई को अक्टूबर और नवम्बर के माह में करना चाहिए। बीजो की रोपाई से पहले उन्हें उपचारित कर ले, जिससे पौधों में लगने वाले रोगो का खतरा कम हो जाता है। एक हेक्टेयर के खेत में तक़रीयन 8 किलो बीज की आवश्यकता होती है।

चुकंदर के बीजों की रोपाई को समतल और मेड दोनों ही तरह की भूमि में किया जा सकता है। समतल भूमि में रोपाई के लिए खेत में उचित दूरी रखते हुए क्यारियों को तैयार कर लेना चाहिए, इस क्यारियों में एक फीट की दूरी रखते हुए पंक्तियो में बीजो की रोपाई की जाती है। इसमें प्रत्येक पंक्ति के बीच में एक फीट की दूरी तथा प्रत्येक बीज को 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी में लगाना चाहिए। यदि आप इसके बीजो की रोपाई को मेडो पर करना चाहते है। प्रत्येक मेड के बीज में एक फुट की दूरी तथा प्रत्येक बीज के बीच में 15 सेंटीमीटर दूरी अवश्य रखे ।

खाद का छिड़काव

ऐसा पाया गया है कि एक टन चुकंदर के उत्पादन को बढ़ाने के लिए खेतों में प्रति हेक्टेयर 60 से 70 किलोग्राम नाइट्रोजन, 100 से 120 किलोग्राम पोटाश, मिट्टी की उर्वरता बरकरार रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसके साथ ही 10 से 15 टन गोबर की खाद फसल की बुवाई से पहले खेतों में मिश्रित करने से उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। चुकंदर की फसल पर बोरिक एसिड का छिड़काव भी कृषि वैज्ञानिक से सलाह करने पर ही किया जाना चाहिए।

चुकंदर की सिंचाई

फसल के शुरुआती दिनों में पानी की प्रचुर मात्रा की आवश्यकता होती है, लेकिन बीजों के अंकुरण के साथ ही पानी की मात्रा को कम कर दिया जाना चाहिए।

खेतों में अत्यधिक जल भराव चुकंदर की पत्तियों को नुकसान पहुंचा सकता है, वहीं पानी की कमी चुकंदर की जड़ों को प्रभावित करता है।

चुकंदर में खरपतवार नियंत्रण

भारत में आमतौर पर चुकंदर के खेतों में उगे खरपतवार निकालने की प्रक्रिया किसानों द्वारा ही निष्पादित की जाती है, जबकि विकसित देशों में मशीनों की मदद से किया जाता है। कृषि वैज्ञानिकों की सलाह के बाद खरपतवार निरोधक के छिडकाव से खरपतवार के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

इसमें ध्यान दिया जाना चाहिए कि बीजों की बुवाई के समय एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच परस्पर दूरी बनी रहे ताकि खरपतवार निकालते समय पौधों को नुकसान न पहुंचे।

चुकंदर में लगने वाले रोग

चुकंदर की फसल में अमूमन देखा गया है कि रोग नहीं लगते हैं, लेकिन रोग लगने की सूरत में उचित मात्रा में केमिकल छिड़काव कर फसल का बचाव किया जा सकता है।

लीफ स्पाट नामक रोग लगने की सूरत में चुकंदर के फसल में दाग उभर आने से पैदावार प्रभावित होती है। इस रोग को लक्षणों के आधार पर चिन्हित किया जा सकता है। लीफ स्पाट से बचाव के लिए एक ही खेत में चुकंदर की फसल दो से तीन साल के अंतराल पर उगायी जानी चाहिए। साथ ही खेतों से प्रभावित पत्तियों को तत्काल निकालकर दूर कर दिया जाना चाहिए। कीटनाशक एवं कवकनाशक के छिड़काव से फसल का बचाव किया जा सकता है।

खेती करते समय दे जरूरी ध्यान

- इसकी खेती के लिए खेत में हर समय नमी रहना आवश्यक होना जरूरी है।
- इसकी खेती ठंडे महीनों या नमी वाले क्षेत्र में अधिक की जाती है।
- ठंडे या नमी वाले क्षेत्रों में उगाई गई चुकंदर की फसल में शक्कर की मात्रा काफी अधिक होती है।
- इसकी खेती के लिए ज्यादा बरसात की जरूरत नहीं पड़ती है।
- इसकी खेती को बारिश प्रभावित नहीं करती है. इसकी खेती के लिए अक्टूबर–नवंबर का महीना अच्छा माना गया है।
- चुकंदर की फसल के लिए 20 डिग्री का तापमान इसकी फसल के लिए काफी होता है।
- खेती में एक हेक्टेयर में 14–15 किलोग्राम बीज की जरूरत होती है।
- फसल की बुआई के लिए एक पौधे से दूसरे पौधे की दूरी करीब 15–20 सेंटीमीटर की होनी चाहिए।

फसल की कटाई एवं संरक्षण

चुकंदर की बुवाई के बाद तकरीबन नौ हफ्तों में फसल तैयार हो जाती है। इस स्थिति में चुकंदर के बल्ब का परिमाप 2.5 सेमी. के लगभग होता है। चुकंदर की पहली खेप निकालने के बाद चरणबद्ध सुनियोजित तरीके से 8 सेमी. के परिमाप होने तक फसल निकाली जा सकती है।

ऐसी स्थिति को आदर्श स्थिति माना गया है और ऐसे में चुकंदर को खेतों से निकाल कर संरक्षित कर देना उचित रहता है। लम्बे समय तक खेतों में छोड़ने पर फल कड़े और बेस्वाद हो जाते हैं।

चुकंदर की औसत पैदावार

अलग–अलग किस्मों के अध्ययन से पता चलता है कि चुकंदर की पैदावार 250 कुन्तल से 300 कुन्तल प्रति हेक्टेयर के बीच हो सकती है। पैदावार बीज के चुनाव एवं अन्य के साथ ही मौसम एवं मिट्टी की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। चुकंदर का बाजारी भाव किस्म और फल के हिसाब से 20 से 50 रूपए के मध्य होता है। किसान भाई एक हेक्टेयर के खेत में चुकंदर की फसल कर दो से तीन लाख की अच्छी कमाई कर सकते हैं।

पपीते की वैज्ञानिक खेती

जगवीर सिंह*, एस० के० वर्मा**, अश्वनी कुमार आर्य***

पपीता एक महत्वपुर्ण फल हैद्य हमारे देश में इसका उत्पादन पूरे वर्ष किया जा सकता है। इसमें पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में विदमान होते है। यह फल उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों का प्रमुख है। पपीते की खेती के लिए मुख्य रूप से जाना जाने वाला प्रदेश झारखंड राज्य है। यहाँ पर पपीते को उचित जलवायु मिलने के कारण इसकी अनेक किस्मों का भी विकास किया गया है। पपीते का उपयोग जैम, पेय पदार्थ, आइसक्रीम एवं सिरप इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसके बीज भी औषधीय गुणों के लिए महत्वपूर्ण हैं। कच्चे फल सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

पपीते के कच्चे परन्तु परिपक्व पपीते के फलों से निकलने वाले दूध को सुखाकर पपेन बनाया जाता है। ओक्सी (1931) के अनुसार पपीते के 'अपरिपक्त्व पत्ते' सब्जी के रूप में 'जावा' नामक स्थान पर काम में लाए जाते हैं। विश्व में इसकी २० स्पीशीज पाई जाती है भारत में उगाई जाने वाली स्पीशीज कैरिका पपाया है। इसके फल खाने में स्वादिष्ट होते है।

प्रजातियां

अनुसंधान के द्वारा भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने इसकी अनेक प्रजातियां विकसित की है भारतीय कृषि अनुस्थान संस्थान, नई दिल्ली के केन्द्र पूसा–बिहार, तमिलनाडु कृषि विश्वविधालय कोयम्बटूर तथा भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर व पन्तनगर विश्वविधालय के द्वारा कई प्रजातिया विकसित की गई तथा कुछ विदेशी प्रजातियां भी है जो भारत में उगाने के लिये उपयुक्त पाई गई है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के केन्द्र, पूसा बिहार में विकसित की गई मुख्य किस्में निम्नवत है।

पूसा डीलीशियस

इसके पौधे मध्यम आकार के जिनमें फलत 40–50 सेमी ऊंचाई पर आती है। पेड की ऊंचाई लगभग 2 मीटर होती है। फल 1.5–2.0 किग्रा० वजन के सुन्दर बड़े नारंगी रंग की तथा मीठे स्वाद युक्त होते है। फलो के गुणों की दृष्टि से यह उत्तम किस्म है। प्रति पेड़ लभगभ 50 किग्रा० फल मिलते है। इसके फलो में बीज कम होते है। इसके जो भी पौधे उगते है वे या तो मादा होते है या उभयलिंगी होते हैं। यह किस्म बिहार क्षेत्र के लिये उपयुक्त पायी गयी है।

पूसा मैजेस्टी

इसकी पैदावार पूसा डीलीशियस की भांति है। इसके पौधे भी माध्यम आकर के होते है। जिसमे फलत 40 –50 सेमी० ऊंचाई पर आती है। फल माध्यम आकर के 1.25–1.50 किग्रा० वजन के ओसत गुणों वाले होते है। इसकी उपज 40 किग्रा० प्रति पेड़ है। इसके फलो की भण्डारण क्षमता अच्छी होती है तथा दूरस्थ बाजारों में भेजने के लिए उपयुक्त है। इसमें पपेन की मात्रा भी अधिक होती है। यह पपीते की गाइनोडायोशियस किस्म है।

पूसा डवार्फ

यह एक अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। जिसमे फलत भूमितल से 25–30 सेमी० की ऊंचाई से आरम्भ हो जाती है। फल 1.5–2.5 किग्रा० भार के मध्यम श्रेणी के अंडाकार व मीठे होते है। प्रति पौधा लगभग 35 किग्रा उपज प्राप्त होती है। जिन स्थानों पर तेज हवाए चलती है वहां पर इसकी खेती सफलतापूर्वक रूप से की जा सकती है। इसमें नर एवं मादा फुल अलग–अलग पौधों पर आते है।

पूसा जायन्ट

यह पपीते की अच्छी पैदावार देने वाली, विशालकाय डायोशियस जाति है। इसके पौधे ऊँचे तथा भूमितल से 50–75 सेमी० ऊंचाई पर फलते है। फल 2–3 किग्रा० भार के बड़े आकार के और ओसत गुण वाले होते है। जिनका उपयोग पेठा आदि बनाने में किया

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान) **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञानं केन्द्र पचपेड़वा, बलरामपुर, ***वाई० पी०–I, भारतीय गेहूं एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जाता है। फलो की उपज लगभग 35 किग्रा० प्रति पोधा होती है। यह तेजी से बढ़ने वाली किस्म है इसके पोधे मजबूत होते है । अतः जहाँ तेज आंधी की संभावना हो वहां यह किस्म अच्छी होती है। इसमें नर एवं मादा फूल अलग अलग पौधे पर आते हैं।

पूसा नन्हा

यह उत्परिवर्तन जनन द्वारा विकसित की गई पपीते की अत्यन्त बौनी किस्म है। पौधे रोपाई के लगभग 230 दिन बाद 30 सेमी ऊंचाई से फलना आरम्भ कर देते हैं। पौधे की कुल ऊचाई 1 मीटर होती है तथा तीन चार बार फसल लेने पर भी ऊंचाई कम ही रहती है। सघन बागवानी के लिये यह किस्म उपयुक्त है। प्रति पौधा लगभग 15 किग्रा० फल प्राप्त होता है। यह घरों के आस–पास गृह वाटिका तथा गमलों में लगाने के लिये भी उपयुक्त पाई गई है।

तमिलनाडू प्रदेश के कोयम्बटूर में स्थित कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई किस्में–

कोयम्बटूर–1

यह छोटे पौधे वाली द्विलिंगी किस्म है। जिसमें जमीन से 60 से.मी की ऊंचाई पर फल लगते है। जो गोल एवं मध्यम आकार के होते है, और उन पर धारियां बनी होती है। फलों का गूदा रसदार एवं स्वादिष्ट होता है। फल का वजन 1–1.5 किग्रा होता है।

कोयम्बटूर–2

यह तेजी से बढ़ने वाली किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के आयाताकार होते हैं, जो पपेन उत्पादन करने के लिये उपयुक्त है। इसके प्रत्येक फल से 5–6 ग्राम पपेन प्राप्त होता है। इस प्रकार, इस किस्म से प्रति हेक्टेयर 300 किग्रा शुष्क पपेन प्राप्त होता है।

कोयम्बटूर–3

यह लाल रंग के गूदे वाली बहुत मीठी किस्म है। फल आकार में गोल होते है। इसके पोधे उभयलिंगी होते है इसलिये इसका प्रत्येक पौधा फल देता है।

कोयम्बटूर–4

नर व मादा पौधे अलग–अलग होते है इसके पौधे बड़ी तेज गति से बढ़ने वाले होते है। गूदा मोटा तथा हल्की जामुनी आभा वाला होता है।

कोयम्बटूर–5

यह किस्म मुख्य रूप से पपेन उत्पादन हेतु ही विकसित की गई है। इसके पेड़ 90 सेमी० की ऊंचाई से फलना प्रारंभ करते है तथा प्रत्येक पेड़ से 70–80 किग्रा फल दूसरे वर्ष प्राप्त होते है। प्रति फल 14–15 ग्राम शुष्क पपेन मिलती है। इसका पौधा बैंगनी कायायुक्त होता है।

कोयम्बटूर–6

यह किस्म मेजेस्टी किस्म से चयन करके निकाली गई है। यह कम ऊंचाई वाली प्रजाति है तथा खाने व पपेन उत्पादन दोनो के लिये उपयुक्त है। इस किस्म के पोधे एकलिंगी होते है इसमें कोयम्बटूर–2 से अधिक पपेन मिलता है। इस प्रजाति का प्रर्दशन पश्चिम बंगाल व तमिलनाडू में सर्वोत्तम रहा है।

बंगलौर में भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित प्रमुख किस्में–

कुर्ग हनी

यह बहुत मीठी किस्म है जिसे हनीडयू नामक किस्म से चयनित किया है। इस किस्म के पौधे उभयलिंगी होते है। इसके फल माध्यम आकार से लेकर बड़े आकार (1.25–2.5 किग्रा) के होते है। फलों की व्यथा चिकनी, जिसके ऊपर धारियां होती है। यह विशेष रूप से दक्षिण भारत में उगाये जाने के लिये उपयुक्त है।

सूर्या

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बगलौर के वैज्ञानिकों ने पपीते की इस नई संकर किस्म को विकसित किया है। इस किस्म को सनराइज सोलो और पिंक फ्लैश स्वीट के संकरण से तैयार किया गया है। इस किस्म के फल 600–800 ग्राम भार वाले होते है गूदा लाल रंग को होता है। गूदा काफी मीठा और स्वादिष्ट होता है। यह एक उभयलिंगी किस्म है। इसके फलों की भण्डारण क्षमता अच्छी है। यह प्रति हैक्टेयर 48–58 क्विंटल तक उपज देती है इस किस्म

के फल निर्यात के लिये उपयुक्त होते हैं।

पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित प्रजाति–

पंत पपीता–1

यह एक बौनी द्विलिंगी किस्म है, जो 45–60 सेमी की ऊचाई से फलना प्रारम्भ करती है। फल गोल, मध्यम आकार के चिकनी त्वचा वाले होते है तथा उन पर धारियां होती है। फलों का रंग पकने पर पीला हो जाता है। इसका गूदा भी पीले रंग का रसदार तथा मीठा होता है। यह एक अच्छी गुणवत्ता वाली, अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। जिसकी औसत उपज 30–40 फल प्रति पौधा होती है और फल का ओसत वजन 1.0–1.5 किग्रा० होता है। यह किस्म तराई क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

अन्य प्रजातियां

पिंक फलेशः यह पपीते की एक संकर किस्म है जो सनराइज सोलो तथा पिंक फलेश स्वीट के संयोग से विकसित की गयी है। फल लाल गूदायुक्त एवं अधिक गूदेदार वाले होते है। इस प्रजाति के फल खाने के लिए सर्वोत्तम माने गये है। तथा पैदावार भी प्रति पौधा अपेक्षाकृत अधिक मिलती है।

वाशिंगटनः यह एक द्विलिंगी किस्म है। तने की गांठे तथा पत्तियों के डंठल बैंगनी रंग के होते है। इसके फल माध्यम आकार के एवं अण्डाकार होते है। जिनका गूदा पीलापन लिये हुए लाल, स्वादिष्ट व मीठा होता है। फलो की महक भी रूचिकर होती है। इस किस्म का भण्डारण भी अधिक समय के लिए किया जा सकता है ।

सलेक्शन–7: इस किस्म के पौधे भी द्विलिगी और औसत आकार के होते है। फल मध्यम आकार के जिन पर धारिया पढ़ी रहती है। पकने पर फलों का रंग पीला हो जाता है। इसका गूदा हल्का गुलाबी व रसदार होता है। यह किस्म पपेन प्राप्त करने के लिए उत्तम है।

सनराइज सोलोः यह एक विदेशी प्रजाति है जो कि हवाई द्वीप से लाई गई है। फल छोटे मध्यम व नाशपाती के आकार के होते है। फल खाने में मीठे व गूदा लाल गुलाबी रंग का होता है। इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी है तथा निर्यात के लिये उपयुक्त है।

ताइवानः यह एक विदेशी प्रजाति है। इसके फलो के गूदे का रंग गहरा लाल होता है यह स्वाद में मीठा होता है यह पपीते की गाइनीडायोशियस किस्म है। इसका प्रत्येक पौधा फल देता है।

इसके अतिरिक्त पपीते की कुछ प्रसिद्ध किस्में रांची, रांची डवार्फ, सीलोन, सिंगापुर, पंत पपीता 2. बरवानी, पेराडेनिया, हाफलौगं, पेन, पी०के 10, पी०लें–12 आदि है।

जलवायु एवं भूमि

पपीता एक उष्ण कटिबंधीय फल वाली फसल है परन्तु इसकी खेती माध्यम समशीतोष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। सर्दी में पाले तथा गर्मी में तेज हवा का पौधे की वृद्धि एवं फलत पर कुप्रभाव पढ़ता है। 1000 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में भी इसे विशेष सावधानियों के साथ उगा सकते है। पपीते की भरपूर उपज लेने के लिये उचित जलनिकास वाली दोमट व बलुई दोमट भूमि उत्तम मानी गई है। क्योकि पपीते के पौधों की जड़ों व तने के समीप पानी रूकने की स्थिति में पौधे की जड़ व तना सडने लगता है। जिसके फलस्वरूप पौधा सूख जाता है। 6.5–7.0 पी.एच मान वाली मृदा पपीते की खेती के लिये उपयुक्त रहती है। कंकरीली तथा ऊसर भूमि में पपीता रोपण नहीं करना चाहिए।

प्रसारण

पपीते का व्यावसायिक प्रसारण बीज द्वारा किया जाता है। इसके सफल उत्पादन हेतु यह आवश्यक है की क्षेत्र विशेष के अनुसार उपयुक्त प्रजाति के उत्तम श्रेणी के बीज को बोया जाये। बीज सदैव प्रमाणित एवं विश्वसनीय संस्थानों से ही लेना चाहिए ।

पौध तैयार करना

नर्सरी हेतु बलुई दोमट भूमि का प्रयोग करे यदि मिट्टी चिकनी हो तो उसमे थोडा बालू अवश्य मिला ले।

नर्सरी तैयार करने हेतु एक भाग गोबर की अच्छी सडी खाद, एक भाग लीफ मोल्ड को तीन भाग मिट्टी में भली भांति मिलाकर जमीन से 15 सेमी० ऊँची क्यारिया बनाये एवं आकार सुविधानुसार रख सकते है। क्यारी 1 मीटर चोडी एवं 3 मीटर लम्बी रख सकते है। इस आकार की प्रत्येक क्यारी में 75–100 ग्राम बीज बोया जा सकता है । पौध उगाने के लिए 4x6 आकार की पोलीथीन बैग का प्रयोग भी कर सकते है एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में पौध लगाने के के लिए 300– 400 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है ।बीज को बोने से पहले 12 घन्टे पानी में भिगोते है। भीगे बीजी को पानी से निकालकर कार्बेन्डाजिम अथवा कॉपर ऑक्सी क्लोराइड के 0.5 प्रतिशत घोल से 10 मिनट तक उपचारित करते है तथा कुछ समय के लिए छाया में सुखा देते है । इसके बीजों को सदैव पक्तियों में बोना चाहिए। क्यारी में 10–10 सेमी की दूरी पर 1–2 सेमी० पर गहरी लाइन बना ली जाती है तथा बीजों की आपसी दूरी 3–4 सेमी रखना ठीक है फिर कतारों में बोये गये बीजो को गोबर की खाद व मिटटी के मिश्रण से ढक देते है। तेज धूप से बीज को बचाने के लिये क्यारी के ऊपर घास या अखबार का कागज फैला देते है। तथा प्रतिदिन हजारे से ही सिंचाई करते है। 15–20 दिन में अकुरण हो जाने के बाद क्यारी से धास या अखबार को हटा देते है। तथा कापर सल्फेट या जिंक सल्फेट का एक ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोलकर सिचाई करते है। इससे फफूंद आने की सम्भावना कम हो जाती है। जब पौधे 10–15 से.मी. के हो जाये तो उन्हें नर्सरी की बड़ी क्यारियों में 15–15 सेमी० की दूरी पर लगाकर हल्की सिंचाई कर दें। इस रोपण के एक माह बाद पौध खेत में लगाने योग्य हो जाती है। पपीता के पौधों को एग्रोनेट (जालीचर) के अन्दर उगाये जाने की प्रबल सम्भावनाए है इससे विषाणु एवं कवक सक्रमण को कम किया जा सकता है।

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए प्रति हैक्टेयर 200 कुन्तल गोबर की खाद डालकर मिटटी पलटने वाले हल से जुताई करनी चाहिए इसके बाद 2–3 बार कल्टीवेटर या हेरो से जुताई करनी चाहिए ताकि मिट्टी भुरभुरी व समतल हो जाए। पूर्ण रूप से तैयार खेत में 30x30x30 सेमी० आकार के गड्ढे 1.5x2 मीटर की दूरी पर एक सप्ताह पूर्व खोदकर खुला छोड देना चाहिए। इसके बाद 125 ग्राम नत्रजन 250 ग्राम फास्फोरस एवं 250 ग्राम पोटाश मिटटी में अच्छी प्रकार मिलाकर गड्ढो को 15 सेमी की ऊंचाई तक भर दें तथा इस प्रकिया के दो–तीन दिन बाद पौध रोपण करना उचित रहता है। नत्रजन की शेष 125 ग्राम मात्रा पोधे लगाने के बाद 3–4 बार में प्रयोग करनी चाहिए। उर्वरक डालते समय यह सावधानी रखे की उर्वरक का संपर्क पौधे से न हो।

पौध रोपण

सामान्यतः पौध रोपण का कार्य जून–जुलाई माह में किया जाता है। पर इस समय रोपण करने से पौधे का आकार बड़ा हो जाता है तथा उसमे विषाणु तथा कवक जनित रोगो के प्रकोप की अधिक सम्भावनाये होती है। अतरू उत्तरी भारत के जिन क्षेत्रो में पाले की आशंका न हो वंहा सितम्बर–अक्टूबर में पौध रोपण किया जा सकता है। फरवरी–मार्च में इसका रोपण करना अच्छा रहता है। इसके लिए पाली हाउस में जनवरी–फरवरी में पोध तैयार की जाती है। लेकिन इस समय पोध रोपण पर प्रति पौध 4–5 किग्रा उपज होती है।

पौध व्यवस्था

पपीते में प्रायः नर एवं मादा पौधे उत्पन्न होते है। अभी तक पौधालय में इनकी पहचान करना संभव नहीं हो पाया है। अनुभव के आधार पर ऐसा देखा गया कि पौधालय में स्वस्थ एवं ओजस्वी पौधा नर तथा कमजोर पौधा मादा होता है। परन्तु बागवान भाई स्वस्थ पौधे खरीदने हेतु लालायित होते है। जिनमे से अधिकतर पौध नर निकल आते है अक्टूबर में रोपित पौधों में मार्च– अप्रैल में फूल आने आरम्भ हो जाते है। नर

पौधों में छोटे–छोटे फूल लकटते हुये गुच्छों में आते है। मादा फूल मोटे पर्णवृन्त युक्त पत्तियों के वक्ष में आते है। उभयलिंगी फूल दोनों के बीच के होते है। नर पौधे का पता लगते ही उसे निकाल देना चाहिए। केवल 10 प्रतिशत स्वस्थ नर पौधे (जो चारो और समान रूप से वितरित हो) को ही छोड़ना चाहिए। इस समस्या का छूटकारा पाने हेतु प्रत्येक गढ़ड़े में दो पौध लगाते है। यदि एक नर निकलता है तो उसे फूल आने की अवस्था में ही हटा देना चाहिए यदि किसी स्थान पर दोनो मादा पौधे हो तो मिटटी की पिंडी के साथ सावधानीपूर्वक खोदकर अन्यत्र स्थान पर इनको लगा देना चाहिए इस प्रकार पौध व्यवस्था से बचने के लिये पूसा डेलीशियल कुर्ग हनीडयू व पूसा मैजेस्टी किस्मों को उगाना चाहिए इनसे जो भी पौधे उगते है वे मादा या उभयलिगी होते है इसके सभी पौधों पर फल लगते है।

सिंचाई

जाडे में 10–15 दिन एवं गर्मियों में 7–8 दिनों के बाद हल्की सिचाई करें। पौधे के चारो तरफ मिटटी चढ़ाकर थाला बना देना चाहिए तथा उसके चारों ओर हल्की सिंचाई इस प्रकार करें कि पानी सीधा तने के सम्पर्क में न आये पपीता के पौधों में पुआल की अवरोध पर्त का प्रयोग करना चाहिए इसके पौधों से टपक सिचाई द्वारा उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

निराई गुडाई

बरसात शुरू होने से पहले ही प्रत्येक पौधे के चारों ओर 20–25 सेमी ऊची मिटटी चढ़ा देनी बाहिए तथा समयानुसार निकाई–गुढ़ाई करके खरपतवारों को नियन्त्रित रखना चाहिए।

अन्तराशस्य

पपीते की फसल में सह उपज के रूप में लेग्यूमिनस फसले जैसे– मटर, मैथी, चना, सोयाबीन आदि ली जा सकती है।

बाड लगाना

पपीता का पौधा कोमल होता है वायु वेग एवं गरम हवा से फलत पर कुप्रभाव पड़ता है। अतः उचित होगा कि रोपण के पहले जून माह में खेत के चारो और नाली बनाकर जैत अथवा सुबबूल के बीज की बुवाई कर दी जाय। इसकी दो–तीन बार कटाई कर देने से खेत के चारो तरफ घनी बाड तैयार हो जाती है जो प्रतिकूल मौसम के अलावा जानवरों एवं चोरो से भी सुरक्षा करती है।

मिटटी चढाना

पपीता में मिटटी चढ़ाना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है वर्षा ऋतु आने से पूर्व तने पर 30 सेमी० तक मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए ऐसा करने से पौधों एवं तना विगलन रोग से बचाव हो जाता है साथ ही अधिक उपज भी मिलती है दूसरी प्रमुख बात यह कि जड़ों के ठंड से बचाना है। अतः जिन स्थानों पर पाला पड़ता है वंहा तने को चारों ओर से धान की भूसी से ढक दें। जिससे जड़े ठंड से बच जाय।

फलों का विरलीकरण

कभी–कभी प्रत्येक पत्ती कक्ष से 2–3 फलों की सेटिंग हो जाती हैद्य ऐसी अवस्था में पौधों पर फलो की अधिक संख्या होने के कारण फल का आकार छोटा हो जाता है। उचित यही होगा कि हाथ से इनका विरलन करके प्रत्येक कक्ष में एक ही फल रहने दिया जाय ताकि फल का पूर्ण विकास ही सकें।

फलों की तुडाई

पपीता का फल जब पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाय तथा जब फल का अग्रस्थ भाग हरे रंग से पीला होने लगे तो उन्हें तोड़ लेना चाहिए इसके फलों को कृत्रिम रूप से पकाना लाभकारी होता है।

उपज

पपीता एक ही वर्ष में तैयार होने वाली फसल है। यदि इसके बाग की उचित देखभाल की जाए तो प्रति पौधा 40–50 किग्रा० तक फल मिलते है तथा प्रति हेक्टेयर 40–50 हजार रूपये की आमदनी हो जाती है।

पूर्वान्चल विकास के लिए कृषि की आधुनिक तकनीकियाँ

के.एम. सिंह एवं आर. आर. सिंह

पूर्वांचल में किसानोंपयोगी नवीनम् तकनीक जिस गति से पहुँचनी चाहिए उस गति से प्रसारित नहीं हो पा रही है। इसको गति देने के लिए आधुनिक तकनीक को कृषकों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं आम जन मानस तक पहुँचाने की अवश्यकता है। पूर्वाचंल विकास के लिए नवीनतम् तकनीक निम्नवत् है।

1. ड्रोन तकनीक का कृषि में उपयोग–

आधुनिक कृषि उत्पादन तकनीक मे से एक प्रमुख तकनीक कृषि ड्रोन तकनीक है। इस उच्च तकनीकी उपकरण ने खेती में नई दिशा दी है। कृषि ड्रोन का उपयोग कृषि उत्पादकता को बढानें के साथ कृषि आधारित रोजगार सृजन एवं श्रमिकों पर निर्भरता कम करने का महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है।

कृषि ड्रोन के उपयोग से निम्न कार्यों को आसानी से सम्पादित कर सकते हैः–

पर्णीय छिड़काव –

कीटनाशक, फफूंदनाशक, जल विलेयक उर्वरक, नैनो यूरिया, नैनों डी.ए.पी. एवं अन्य कृषि निवेशों का पर्णीय छिड़ाकाव कम समय में एवं उचित मात्रा में कर सकते है। विशेषकर वह फसलें जिनका उत्पादन नकदी फसल अथवा अधिक क्षेत्रफल में लगाया जाता है उनके लिए विशेष उपयोगी साबित हो रहे है। जैसे गन्ने में सितम्बर अक्टूबर माह में गन्ने में लगने वाले रोग व कीट के लिए फफूदनाशी व कीटनाशी का छिड़काव, आलू वाले क्षेत्र में अधिक तापमान कम होने व कोहरे की स्थिति में कम समय में अधिक क्षेत्रफल में छिड़काव किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य फसलों में भी छिड़काव किया जा सकता है। इसके उपयोग से पूर्वाचंल में चल रही कृषि मजदूर की समस्या का हल निकाला जा सकता है।

कृषि सर्वेक्षण –

ड्रोन से खेत का विस्तृत सर्वेक्षण कर पौधरोपण, पानी की आपूर्ति मृदा स्वास्थ्य की निगरानी कर सकते है। ड्रोन की मदद से खेत का विस्तृत नक्शा बनाकर समस्याओं को पहचान कर समाधान कर पूर्वाचंल के किसानों की आय में वृद्धि किया जा सकता है।

फसल वितरण –

कुछ क्षेत्रों में ऐसी भौगोलिक स्थिति होती है विशेषकर नदियों के किनारे जहॉ पर ट्रैक्टर आदि कृषि उपकरण को प्रयोग नहीं कर सकते उस स्थिति में नमी की दशा में फसलों के बीज अथवा पेड़ पौधो के बीज बोआई ड्रोन मे माध्यम से कर कृषि क्षेत्रफल को बढ़ाकर पूर्वाचंल के किसानों की आय को बढ़ा सकते है।

ड्रोन के माध्यम से खेती में रोजगार के अवसर –

कृषि ड्रोन के उपयोग से कृषि जगत में ड्रोन पायलट, ड्रोन तकनीक सहायक, ड्रोन सॉफ्टवेयर डेवलपर के रूप में रोजगार सृजित किए जा सकते है, जो पूर्वाचंल विकास में सहायक सिद्ध होगा।

2. कृषि यन्त्रीकरण (मशीन) से फसल अवशेष प्रबन्धन –

पूर्वाचंल में धान–गेहूँ फसल चक्र को प्रभावी रूप से अपनाने के कारण गिरती उर्वराशक्ति (ओर्गेनिक कार्बन, नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, गौंण पोषक तत्व–कैल्शियम, मैगनीशियम, सल्फर एवं सूक्ष्म पोषक–जिंक, लोहा, कॉपर, मैंगनीज, बोरान, क्रोमियम, मोलीबिडनम आदि) कमी एवं वातावरण में बढ़ते प्रदूषण के लिए आवश्यक है कि फसल अवशेष प्रबन्धन मशीनों के माध्यम से यथा स्थान (इन–सीटू) या खेत से बाहर निकालकर (एक्स–सीटू) के माध्यम से फसल अवशेष प्रबन्धन किया जाय। सरकार इस कार्य के लिए कृषि मशीनीकरण पर अनुदान दे रही है। इस तकनीक से खेत की बुआई से 10 से 15 दिन पूर्व हो जाती है, लागत मूल्य में लगभग 6 से 7 हजार प्रति एकड़ मे कमी, फसलों में कम खरपतवारों का जमाव, सिंचाई में पानी की बचत एवं पोषक तत्वों के पुनः चक्रीकरण से उर्वरकों की बचत होती है। इस तकनीक से पूर्वाचंल के किसानों की आय में वृद्धि, जमीन की उर्वरा शक्ति में सुधार एवं ग्रामीण युवाओं को रोजगार के अवसर से पूर्वाचंल विकास में सहयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के मशीनरी बैंक ग्राम पंचायत अथवा के.वी.के. स्तर पर खोले जा सकते है।

3. कृषि मशीन (सीडड्रिल/प्लान्टर) से बुआई कार्य–

पूर्वाचंल क्षेत्र में सामन्यतः छिटकवा विधि से बुआई कार्य करते है जिसके कारण बीज की मात्रा अधिक एवं उर्वरक की उपयोग दक्षता कम होती है तथा फसल

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

का उत्पादन भी अच्छा नहीं मिलता है। इसके लिए फसलों की बुआई सीडड्रिल अथवा मल्टी क्रॉप प्लान्टर से बुआई करने पर निर्धारित बीज दर का प्रयोग के साथ अधिक जमाव प्रतिशत एवं प्रयुक्त उर्वरक बीज के ठीक नीचे जमींन में पहुॅचने से उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है एवं साथ ही फसल कतार में बुआई होने के कारण फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है। किसानों की लागत मूल्य में कमी, शुद्ध लाभ में वढ़ोत्तरी के साथ अन्तः सस्य क्रियायें करने में आसानी हो जाती है।इस तकनीक बढ़ावा देने से पूर्वाचंल के किसानों की आय में वृद्धि होगी एवं पूर्वाचंल के विकास को गति मिलेगी।

4. धान उत्पादन की सीधी बुआई विधि –

पूर्वाचंल में धान की बुआई अधिकतर रोपण विधि से करते हैं जिसमें अधिक मानव श्रम, अधिक जल तथा भूमि में लेव लगाकर करते है, जिसके कारण अधिक लागत मूल्य आता है। अधिक सिंचाई जल की अवश्यकता के साथ ही घटते मानव श्रम की समस्या का सामना करना पड़ता है। इस समस्या के समाधान के लिए धान की सीधी बुआई विधि से कराई जाय तो धान की लागत मूल्य में कमी, धान की लाइन में बुआई, कम पानी की आवश्यकता होती है। इसमें खरपतवार की समस्या होती है, जिसके लिए खरपतवार प्रबन्धन प्री इमरजेंस के रूप में पेन्डीमेथलीन 3.33 लीटर प्रति हेक्टेअर एवं पोस्ट इमरजेंस के रूप में पेनोक्सुलम + साहेलोफाप–बुटाइल 1.00 लीटर प्रति हेक्टेअर की दर से बुआई के 18 से 22 दिन पर कर देते है। इस प्रकार किसान की शुद्ध आय में वृद्धि होगी, मानव श्रम की बचत, जल बचत के साथ ग्रीन गैस का उत्सर्जन नहीं होगा जिससे वातावरण के वढ़ते तापमान को रोकने में मद्द होगी, भूमि जल स्तर को गिरने से रोका जा सकता है। इस विधि को अपनाने से पूर्वाचंल के किसानों की आय बढ़ेगी एवं पूर्वाचंल विकास में सहयोगी होगी।

5. कृषि उत्पादन में जैव उर्वरक एवं जैव रसायन का प्रयोग कर जैविक खेती को बढ़ावा –

पूर्वाचंल में छोटी जोत एवं अधिक रसायनिक उर्वरक, कीटनाशी तथा फफूंदनाशी के प्रयोग से मानव जीवन में कैंसर जैसी बीमारियों बढ़ती जा रही है। जिसके उपचार में पूर्वाचंल के लोगों को उपचार में बहुत ही धन खर्च करना पड़ रहा है। ऐसी बीमारियों बचने के लिए हमें ऐसे कृषि उत्पाद की आवश्यकता है जिसमें रसायनों, कीटनाशी अथवा फफूंदनाशी का प्रयोग नहीं किया गया हो। इसके लिए जैविक खेती को बढ़ावा हेतु जैव उर्वरक, जैव रसायनों का प्रयोग कर जैविक कृषि उत्पाद पैदा करें एवं इसके लिए जैविक उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थानीय बाजार में व्यवस्था सुनिश्चित हो एवं किसानों को बिक्री से अधिक बिक्री मूल्य प्राप्त हो। इस तकनीक को अपनाने से छोटे व मध्यम श्रेणी के किसान अधिक लाभन्वित होगें। परिणामस्वरूप पूर्वाचंल के किसानों के विकास के साथ पूर्वाचंल का विकास सम्भव होगा।

6. प्राकृतिक खेती –

बढ़ते कुपोषण एवं विगड़ते स्वाथ्य के लिए आवश्यक है कि फसल उत्पादन प्राकृतिक विधि से करें। इस विधि में फसल उत्पादन में जीवामृत, बीजामृत, घन बीजामृत, सतपर्णी अर्क, वृह्मास्त्र, अमृतपानी, नीमास्त्र, संजीविक आदि का प्रयोग करते है।इस विधि से फसल उत्पादन करने से भूमि सूक्ष्म जीवों की संख्या जिससे विभिन्न प्रकार के होर्मोन्स बनते है जो फसल में अवरोधी क्षमता पैदा करते है। सूक्ष्म जीवों द्वारा जमीन में उपलब्ध पोषक तत्वों (नत्रजन, फोस्फोरस, पोटाश, जिंक, लोहा आदि) की उपलब्धता में वृद्धि, ऑर्गेनिक कार्बन में वृद्धि होती है।इसमें श्रीअन्न (मिलेट्स) अथवा अन्य ऐसी फसलों का उत्पादन करते है, जिनका पोषक मान अधिक हो। इस विधि से लागत मूल्य में कमी आज जाती है। किसानों को अपने उत्पाद का अधिक मूल्य भी मिलता है। किसानों का शुद्ध लाभ अधिक होगा एवं मानव स्वास्थ्य में सुधार होगा। इस तकनीक को अपनाकर पूर्वाचंल विकास को गति दिया जा सकता है।

7. गन्ना उत्पादन में अन्तः फसल/सह फसल के साथ समय पर बुआई को बढ़ावा –

पूर्वाचंल में गन्ना काफी क्षेत्रफल में लगाया जाता है प्रायः देखा गया है कि यहॉ का किसान गन्ने की फसल की बुआई बिलम्ब से, लाइनों को कम दूरी तथा बिना किसी सह फसल के साथ करता है। जिसके कारण किसानों को गन्ना उत्पादन कम, लागत मूल्य अधिक तथा शुद्ध लाभ कम मिलता है। पूर्वाचंल के किसानों को गन्ने की शरदकालीन बुआई 15 सितम्बर से 25 अक्टूबर के मध्य एवं बसन्त कालीन गन्ने की बुआई 15 फरवरी से मार्च अन्त तक कर लेनी चाहिए। गन्ने बुआई ट्रेंच अथवा कम से कम 3 फीट की दूरी पर लाइनों में करें। शरदकालीन गन्ने के साथ सह फसल के रूप में तोरिया, मसूर, आलू, सब्जी मटर, सब्जी

चना, वांकला, शरदकालीन कालीन सब्जियां जैसे – मूली, गाजर, राजमा, मेंथी, पालक, धनियां को उगाएं। बसन्तकालीन के साथ उर्द, मूंग, कद्दू वर्गीय सब्जियों का उत्पादन, तरबूज, खरबूज, ककड़ी आदि का सह फसल गन्ने मेउत्पादित करने से किसानों गन्ने से मध्य अवधि में आय प्राप्त हो जाती है। गन्ने के साथ ली गई सह फसल से गन्ने की लागत मूल्य निकल आता है साथ ही गन्ने का औसत उत्पादन अधिक मिलता है। जिसके कारण किसानों का शुद्ध लाभ अधिक होता है। अन्त/सह फसल लागने से किसानों को अपने यहां ही वर्ष भर रोजगार मिलता रहता है। इस तकनीक को अपनाने से किसानों की आय में वृद्धि के साथ पूर्वाचंल के विकास को गति मिलेगी।

8. भूमि का समतली करण हेतु लेजर लेण्ड लेबलर का प्रयोग–

कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढाने के लिए भूमि का समतलीकरण किया जाना अति आवश्यक है जिसको लेजर लेबलर के माध्यम से कार्य कराया जाना चाहिए। इस तकनीक में लगभग 25 से 30 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। इस तकनीक को अपनाने से निम्न लाभ मिलता है।

- किसानों द्वारा प्रयुक्त की जा रही भूमि/नहर के पानी की उपयोग क्षमता बढ़ेगी, जिससे जल स्तर का घटने से रोका जा सकता है।
- सिंचाई जल एक समान लगने के कारण फसल बढ़वार समान होगी, गुणवत्ता युक्त उत्पाद के साथ फसल में परिपक्वता एक साथ आयेगी।
- भूमि में समान मात्रा में पोषक तत्व उपलब्धता रहेगी जो फसल की उत्पादकता में वृद्धि करेगा।
- लेजर लैण्ड लेबलर के उपयोग से ग्रामीण युवाओं को रोजगार के अवसर प्राप्त होगें।
- लागत मूल्य एवं समय में कमी के साथ गुणवत्ता युक्त उत्पादन प्राप्त होगा। परिणामस्वरूप पूर्वाचंल के कृषकों की शुद्ध आय में वृद्धि होगी। इससे पूर्वाचंल के विकास को सहयोग होगा।

9. सूक्ष्म सिंचाई पद्धति (ड्रिप एवं स्प्रिंकलर) तकनीकी का उपयोग –

ड्रिप सिंचाई विधि में सिंचाई जल उपयोगिता 95 से 100 प्रतिशत एवं स्प्रिकंलर सिंचाई विधि में सिंचाई जल उपयोगिता 80 से 85 प्रतिशत होती है। नाली सिंचाई विधि में जल उपयोगिता 60 से 70 प्रतिशत होता है। सिंचाई कार्य में पूर्वाचंल के किसानों को स्प्रिकंलर अथावा ड्रिप सिंचाई का प्रयोग कराने से पूर्वाचल के किसानों की उत्पादन वृद्धि के साथ–साथ गुणवत्ता युक्त उत्पाद मिलेगा, जिससे पूर्वाचंल के किसानों की शुद्ध आय में बढोत्तरी होगी। पूर्वाचंल के किसानों को कृषि उत्पादों को राष्ट्रीय अथवा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर बाजर में बिक्री करने के अवसर प्राप्त होगें। इस तकनीक हेतु आर्थिक सहयोग प्रधानमन्त्री सिंचाई योजना के माध्यम से किसानों को लाभान्वित कराया जा सकता है। जिससे पूर्वाचंल एवं पूर्वाचंल के किसानों का आर्थिक विकास होगा।

10. वर्षा जल संचयन हेतु तालाबों का निर्माण कर जल से सिंचाई एवं मछली पालन –

निश्चित भू–भाग के लिए तालाब का निर्माण किया जाय, जिसमें उस भू–भाग का वर्षा जल का संचय किया जाय। जिसका उपयोग कृषि उत्पादन में सिंचाई जल के रूप में, मछली पालन में किया जाय। इस प्रकार से गिरते भू जल स्तर को रोका जा सकता है। साथ ही सिंचाई पर ऊर्जा व्यय कम किया जा सकता है। तलाबों में मछली पालन से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकेगें, जिससे किसान अपनी शुद्ध आय में इजाफा कर अपनी आय की वृद्धि कर सकेगें। किसानों की आय में इजाफे के साथ पूर्वाचंल के विकास किया जा सकता है।

11. सब्जी उत्पादन मचान,सहारा (स्टेकिंग) या उठी हुई क्यारी विधि से उत्पादन

वर्षा काल में कद्दू वर्गीय सब्जियों का उत्पादन मचान पर करना चाहिए। मचान पर करने से सब्जियों की उत्पादन गुणवत्ता युक्त एवं अधिक प्राप्त होता है। कुछ सब्जियां जैसे टमाटर कम बढ़वार वाली होती है ऐसी सब्जियों का उत्पादन स्टेकिंग विधि से करने पर सब्जियों के फल गुणवत्ता युक्त, कम कीट–रोग व्याधि का प्रकोप तथा अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। ऐसी सब्जियां जिनकी सामान्य बढ़वार होती है, उनकी खेती उठी हुई क्यारियों पर करें इससे सब्जी उत्पादन अधिक, गुणवत्ता युक्त के साथ जड़ गलन जैसी बीमारी व फल गलन से बचाया जा सकता है। इन विधियों में परम्परागत तरीके से उत्पादित की जाने वाली सब्जियों से अधिक उत्पादन, जल व उर्वरक की बचत, औसतन अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार किसानों की आय में वृद्धि होगी एवं पूर्वाचंल विकास में विधियां उपयोगी साबित होंगी।

कुपोषण को ख़त्म करने में पोषण वाटिका की भूमिका

अंजली, साधना सिंह एवं श्वेता चौधरी

कुपोषण का मतलब खराब पोषण से है। आमतौर पर, यह तब होता है जब कोई व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं करता (अल्पपोषण) या उसका आहार शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान नहीं करता। स्वस्थ रहने के लिए, संतुलित आहार में कैलोरी, प्रोटीन, खनिज और विटामिन जैसे सभी जरूरी पोषक तत्व शामिल होने चाहिए। कुपोषण को समाप्त करने के लिए सरकार और संबंधित विभाग राष्ट्रीय पोषण मिशन के अंतर्गत महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। पोषण वाटिका वह जगह है जो घर के आस पास स्थित होती है और जिसका उपयोग घर की खाद्य जरुरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न सब्जियों और फलों के उत्पादन के लिए किया जाता है। यह पारंपरिक खेती की एक महत्तवपूर्ण विधि रही है लेकिन हाल के वर्षों में इसका महत्व कम हो रहा है पोषण वाटिका जिसे रसोई घर बाग या गृह वाटिका भी कहा जाता है यह घर के आस–पास पड़ी खाली जमीन का उपयोग करके स्थापित की जाती है इस जमीन पर मौसम के अनुसार सब्जियां उगाई जा सकती है, ताकि पूरे वर्ष ताजे सब्जियां प्राप्त हो सकें। इस तरह के बगीचे से परिवार को ताजी और पौष्टिकता भरपूर सब्जियां मिलती हैं जो साल भर की ज़रूरतों को पूरा करती है स्कूल में भी छात्र–छात्राओं को उपलब्ध खाली ज़मीन पर फलों और सब्जियों को लगाने के लिए प्रेरित करना चाहिए स्कूलों में पोषण वाटिका की स्थापना के लिए प्रशिक्षण भी कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

इस कार्य में भाग लेने से बच्चों को प्रकृति के करीब लाने और उसके प्रति जागरूक करने में मदद मिलेगी। इसके अतिरिक्त यह बागवानी के प्रति बच्चों की रुचि को बढ़ावा देगा, बच्चों में सही पोषण विचारधारा को विकसित करेगा व बच्चों को अस्वस्थ खाद्य पदार्थों से होने वाले नुकसानों के बारे में जागरूक करेगा। यह पहल बच्चों के समग्र विकास और स्वास्थ्य के लिए एकमहत्वपूर्ण कदम हो सकती है।

पोषण वाटिका घर के आंगन या छोटे बगीचों में हरी–भरी सब्जियों और फलों लाए साथ ही महिलाओं को आर्थिक लाभ भी होगा। अच्छे स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि भोजन में विभिन्नता इसमें हरी सब्जियों, लाल या पीले रंग की सब्जियों, और दालें या अनाज शामिल हैं, जो शरीर को आवश्यक विटामिन्स, खनिज, और प्रोटीन प्रदान करते हैं। गांवों और समुदायों में पौष्टिक आहार के महत्व के बारे में शिक्षा और जागरुकता फैलाना ताकि लोग स्वस्थ आहार के महत्व को समझ सके और अपने भोजन में सही पोषण तत्व शामिल कर सकें इस पर जोर भी देने की आवश्यकता है।

नियमित स्वास्थ्य जांच और पोषण संबंधित सलाह से भी लोगों को लाभ होगास हरी सब्जियाँ 'सुरक्षात्मक भोजन' के रूप में मानी जाती हैं और ये संतुलित आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। एक संतुलित आहार में ऊर्जा, विटामिन, खनिज, वसा और आवश्यक एमिनो एसिड की उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए, राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद ने प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 300 ग्राम सब्जियों की खपत की सिफारिश की है। इसमें 150 ग्राम पत्तेदार सब्जियाँ, 75 ग्राम कद और मूल वाली सब्जियाँ, और 75 ग्राम अन्य सब्जियाँ शामिल हैं। बाजार में आने वाली अधिकांश सब्जियों में कीटनाशक अवशेषों के उच्च स्तर के कारण लोगों को अपनी सब्जियां खुद उगाने के लिए प्रेरित करने से असंतुलित आहार के कारण सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी लाखों लोगों के जीवन और स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है। आहार विविधीकरण के माध्यम से आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाकर आहार को संतुलित किया जाता जाना चाहिएस जिससे स्वास्थ्य में सुधार, सोचने की क्षमता और कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। पोषण वाटिका में ऐसा फसल चक्र अपनाये। जिससे पूरे साल बगीचे से एक सामान्य परिवार की सब्जियों की जरूरत पूरी की जा सके। इस वाटिका के लिए ऐसी फसलें और किस्में चुनेस जो अत्यधिक पौष्टिक होती हैं और जिनमें कीट और बीमारियों की समस्या न्यूनतम होती है। इस तरह से सालाना लगभग 300 किलोग्राम सब्जियां पैदा की जाती हैं, जो एक औसत आकार के परिवार के आहार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त होती हैं।

खाद्य एवं पोषण विज्ञान विभाग,सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय अयोध्या–224229 (उ०प्र०)

ताजे सब्जियों के सेवन से हमें विटामिन, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, और अन्य जरूरी पोषक तत्व मिलते हैं। हमारे देश के अधिकांश परिवारों का भोजन पोषण की दृष्टि से संतुलित नहीं होता, जिससे कई गंभीर बीमारियाँ होती हैं। इन समस्याओं का समाधान थोड़ी जानकारी और मेहनत से संभव है। हम मौसमी सब्जियों को अपने घर के आंगन या छतों पर उगा सकते हैं। जिनके पास पर्याप्त जगह नहीं है, वे गमलों, पुरानी डिब्बों या छत पर सब्जियाँ उगा सकते हैं। इससे ताजे और पौष्टिक सब्जियाँ मिल सकती हैं और परिवार का स्वास्थ्य भी बेहतर रहेगा, साथ ही आसपास का पर्यावरण हरा–भरा और सौहार्दपूर्ण रहेगा।

पोषण तत्वों के आधार पर सब्जियों की सूची भिन्न भिन्न सब्जियों से भिन्न प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं जैसे

प्रोटीनः सेम, मटर, लोबिया, फ्रेंच बीन, बाकला, ग्वार, चौलाई।

कार्बोहाइड्रेटः शकरकंद, आलू, चुकंदर, अरबी।

विटामिन–एः गाजर, शकरकंद, टमाटर, पालक, शलजम, कद्दू, पत्तागोभी, मैथी, चौलाई, धनिया।

विटामिन–बीः सेम, मटर, अरबी, लहसुन।

विटामिन–सीः आंवला, नींबू, टमाटर, शलजम, हरी मिर्च, फूलगोभी, गांठगोभी, करेला, चौलाई, मूली की पत्तियां।

कैल्शियमः चौलाई, धनिया, चुकंदर, मैथी, कद्दू, टमाटर, प्याज।

पोटैशियमः आलू, करेला, शकरकंद, सेम, मूली।

लौह तत्वः पालक, करेला, बथुआ, चौलाई, मैथी, मटर, पुदीना।

यह सूची पोषण वाटिका में पौष्टिक सब्जियों के चयन में सहायक होगी।

पोषण वाटिका की योजना बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः

परिवार की संख्याः परिवार के आकार के आधार पर सब्जियों और फलों की मात्रा और किस्में चुनें। छोटे परिवार के लिए सीमित मात्रा में पौधे लगाना उचित हो सकता है, जबकि बड़े परिवार के लिए अधिक विविधता और मात्रा की आवश्यकता हो सकती है।

उपलब्ध संसाधनः मिट्टी, पानी, और धूप की उपलब्धता को ध्यान में रखें। मिट्टी की गुणवत्ता और जल निकासी के आधार पर पौधों का चयन करें।

समयः पौधों की देखभाल और आपके समय की उपलब्धता को देखते हुए पौधे चुनें। कुछ पौधों को अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है जबकि कुछ कम देखभाल में भी उग सकते हैं।

फलदार वृक्षः किनारे की ओर फलदार वृक्ष जैसे केला, पपीता, मीठी नीम, करौदा और अनार लगाना अच्छा रहेगा। ये वृक्ष दीर्घकालिक होते हैं और फल देने में समय लेते हैं, लेकिन एक बार स्थापित हो जाने के बाद नियमित रूप से फल देंगे।

बहुवर्षीय सब्जियाँः मचान पर चढ़ाने वाली बहुवर्षीय सब्जियाँ जैसे परवल, कुंदरू और सेम भी लाभकारी हो सकती हैं। इन्हें ऊँचाई पर उगाने से जगह की बचत होती है और फसल का उत्पादन भी बढ़ता है।

अन्य सब्जियाँः रोज़मर्रा की सब्जियाँ जैसे टमाटर, भिंडी, मिर्च, पालक आदि भी शामिल करें, जो जल्दी उगती हैं और नियमित रूप से फसल देती हैं।

विविधताः एक ही प्रकार के पौधों की बजाय विविधता बनाए रखें, ताकि पौधों की परागण और पोषण संबंधी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें और समस्याएँ कम हों। इन बिंदुओं को ध्यान में रखकर आप एक संतुलित और पौष्टिक पोषण वाटिका तैयार कर सकते हैं, जो आपकी खाद्य ज़रूरतों को पूरा करेगी और आपके आँगन को हरा–भरा बनाएगी।

पोषण वाटिका आपके घर के निकट जमीन पर ही बनायें! ऐसा स्थान चुने जहाँ परिवार के सदस्य आसानी से पहुंच सके। और नियामित रूप से देख–रेख कर सके! सिंचाई की व्यवस्था सुनिश्चित करें! उस स्थान पर पानी देने के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध हो। ताकि पौधों को उचित मात्रा में पानी मिल सके। सूरज की रोशनी स्थल पर पर्याप्त धूप होनी चाहिए। जिससे पौधे अच्छी तरह से बढ़ सकेस बीज सब्जियों के व फलों पौधे के लिए निकट के कृषि विज्ञान केन्द्रों से सहायता व जानकारी अवश्य प्राप्त करें।

बेहतर उपज के लिए निम्नलिखित सुझाव अपनाएंः

मृदा तैयारीः मृदा को गहराई से खोदें और उसमें से खरपतवार निकालकर इसे अच्छे से तैयार करें। इससे मृदा की संरचना और वायु संचार में सुधार होगा।

खाद का उपयोगः मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए उसमें सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट मिलाएं। फसल की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जैविक खाद का उपयोग करें। यदि जैविक खाद उपलब्ध नहीं हो, तो उर्वरक का उपयोग भी किया जा सकता है। पोषण वाटिका में रासायनिक खादों का प्रयोग बिल्कुल ना करें।

सिंचाई: वर्षा के मौसम में ऊंची क्यारियां बनाएं ताकि जल निकासी बेहतर हो। ग्रीष्म और शीत ऋतु में समतल क्यारियों में सतह सिंचाई प्रणाली का इस्तेमाल करें, जिससे पानी की उपलब्धता बनी रहे और फसल को उचित पोषण मिले। इन उपायों से मृदा की गुणवत्ता और फसल की उपज में सुधार हो सकता है।

पोषण वाटिका की योजना– सही पौध दूरी का ध्यान रखना आवश्यक है ताकि पौधे अच्छे से विकसित हो सकें। कद्दूवर्गीय सब्जियाँ जैसे लौकी, गिलकी, और करेला को फैलने के लिए अधिक जगह की जरूरत होती है, इसलिए इन्हें एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर लगाना चाहिए। टमाटर, मिर्ची, और बैंगन जैसे पौधों को भी उचित दूरी पर लगाना चाहिए ताकि उनका विकास सही से हो सके और हवा का प्रवाह अच्छा रहे।

उचित पौध दूरी: कंद और पत्ते वाली सब्जियाँ जैसे पालक, प्याज, और लहसुन को कम जगह पर लगाया जा सकता है क्योंकि इन्हें ज्यादा स्थान की जरूरत नहीं होती। पत्ते और सलाद वाली सब्जियों की बुवाई थोड़े–थोड़े समय के अंतराल पर करनी चाहिए ताकि इनकी उपलब्धता लंबे समय तक बनी रहे। कुछ सब्जियों को जैसे टमाटर और लौकी को सहारे की जरूरत होती है, ताकि उनका उत्पादन अच्छा हो सके और वे ठीक से बढ़ सकें।

खरपतवार: फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। चाटिका में उगने वाले खरपतवारों को नियमित रूप से हटाते रहें। बगीचे में कीटनाशकों का उपयोग न्यूनतम मात्रा में करें।

घरेलु उपयोग हेतु कटाई एवं तुड़ाई: घरेलू उपयोग के लिए पत्तेदार सब्जियों की कटाई 10–15 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। टमाटर को तब तोड़ें जब वह पूरी तरह से लाल हो जाए, और लौकी, मिडी, तथा मटर की तुड़ाई नरम और हरी अवस्था में करनी चाहिए। तुड़ाई सुबह जल्दी या शाम को करें। यदि फलों और सब्जियों की अधिकता हो जाए, तो उनका संरक्षण किया जा सकता है, जैसे कि जेली, जैम या स्कैवेश बनाकर, ताकि उन्हें बाद में इस्तेमाल किया जा सके।

वाटिका में लगने वाली लागत: घर में सब्जी का बगीचा लगाने के लिए अधिक खर्च की आवश्यकता नहीं होती। आपको विभिन्न सब्जियों के बीज की आवश्यकता होगी, जिनकी लागत लगभग 300–400 रुपये आएगी और जैविक खाद तथा उर्वरक पर भी लगभग 400 रुपये खर्च होंगे। बाकी काम घर के सदस्य अपने खाली समय में आसानी से कर सकते हैं, जिससे श्रम की लागत बच जाएगी। इस बगीचे की देखभाल के लिए सप्ताह में औसतन 5–6 घंटे पर्याप्त होते हैं।

मौसम के अनुसार ली जाने वाली सब्जियों की सूची इस प्रकार है:

वर्षा या खरीफ ऋतु (जुलाई से अक्टूबर तक): भिंडी, लोबिया, ग्वार फली, मिर्च, सेम, कद्दू, तोरई, करेला, खीरा, टिण्डा, कुंदरू, परवल, मूली, गाजर, पालक, अरबी, चौलाई, बैंगन, टमाटर, शकरकंद आदि।

जाड़े या रबी का मौसम (अक्टूबर से फरवरी तक): आलू, फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, ब्रोकोली, मूली, पालक, सलाद, बैंगन, टमाटर, शिमला मिर्च, गाजर, बीन्स, चुकंदर, प्याज, लहसुन, मटर, मैथी, सरसों आदि।

गर्मी या ग्रीष्म ऋतु (मार्च से जून तक): भिंडी, लोबिया, ग्वार फली, मिर्च, तोरई, कद्दू, लौकी, करेला, खीरा, खरबूजा, तरबूज, परवल, चौलाई, अरवी, मूली (गर्मी वाली किस्में), पालक आदि।

पोषण वाटिका के लाभ:

- पौष्टिक सब्जियाँ और फल कुपोषण को दूर करने में मदद करते हैं।
- नियमित फल और सब्जियाँ खाने से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती है।
- फल और सब्जियाँ विभिन्न महत्वपूर्ण सूक्ष्म तत्वों के अच्छे स्रोत हैं, जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं।
- आयरन युक्त आहार से एनीमिया की समस्या कम होती है।
- स्थानीय सब्जियाँ खट्टे फल, अदरक, हल्दी जैसी स्थानीय सब्जियों के सेवन से शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता में वृद्धि होती है।

स्वयं की मेहनत और पसीने से उगी हरी–भरी, ताजगी भरी सब्जियाँ और घर के आसपास तथा छतों पर हरियाली देखकर आपका मन और शरीर दोनों प्रसन्न होंगे, जिससे बीमारियाँ दूर रहेंगी। अपने द्वारा उगाई गई सब्जियों से न केवल अच्छा स्वास्थ्य मिलेगा, बल्कि स्वादिष्ट भोजन का आनंद भी लिया जा सकेगा। इसके साथ ही प्रति माह 3000–6000 रुपये की बचत संभव होगी, जिससे आर्थिक लाभ होगा। बेकार या खाली स्थान पर सब्जियाँ उगा कर उसका सही उपयोग किया जा सकता है और रसोईघर से निकलने वाले अपशिष्टों और पानी का भी सही तरीके से उपयोग हो सकेगा।

खाद्य आपूर्ति में वर्टिकल फार्मिंग की भूमिका

सुमन पूनियाँ*, आस्तिक झा**, निहारिका सिंह*

स्मार्ट खेती का 21वीं सदी में खाद्य स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 2050 तक दुनिया की बड़ी आबादी को भोजन उपलब्ध कराने के लिए वर्टिकल फ़ार्मिंग को एक आधुनिक उपकरण माना जाता है। ऐसा फार्म जो लोगों के नजदीक है और सीमित प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने के साथ–साथ वह सस्ती, जैविक और रोगमुक्त सामग्री उपलब्ध कराता हैद्य वर्टिकल फ़ार्मिंग कम पानी और मिट्टी के उपयोग के बिना संरचनाओं जैसे कि एक गगनचुंबी या पुराने गोदाम में में खड़ी परतदार परतों में फसलों को उगाने की प्रथा है। वर्टिकल फ़ार्मिंग के आधुनिक विचार इनडोर खेती तकनीकों और नियंत्रित पर्यावरण कृषि (सीईए) प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं, जहां सभी पर्यावरणीय कारकों को नियंत्रित किया जा सकता है जैसे प्रकाश, आर्द्रता, तापमान और बायोफोर्टिफिकेशन का कृत्रिम नियंत्रण भी जो फसलों को उनके पोषण मूल्य को बढ़ाने के लिए मदद करता है।

बढ़ती आबादी के कारण बढ़ती खाद्य मांग के साथ–साथ घटती कृषि योग्य भूमि भी एक बड़ी चुनौती है। हमारी विशाल आबादी का समर्थन करने वाले उच्च उपज खेती के तरीकों की विशेषता हमारे सीमित भंडार के ताजा पानी, जीवाष्म ईंधन और मिट्टी के उपभोग की है। वर्टिकल फ़ार्मिंग एक शहर या शहरी केंद्र में एक इमारत के भीतर फसलों की खेती है, जिसमें फर्श कुछ फसलों को समायोजित करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं। ये हाइट्स भविष्य की कृषि भूमि के रूप में कार्य करेंगे और वे छोटे या बिना कृषि योग्य भूमि वाले राष्ट्रों निर्मित कर सकते हैं, जो वर्तमान में खाद्य उत्पादन करने में असमर्थ हैं।

वर्टिकल फ़ार्मिंग आज की शहरी जरूरतों और भावी पीढ़ी के लिए टिकाऊ खाद्य उत्पादन इकाइयों का वैकल्पिक स्रोत है। खाद्य उत्पादन सिर्फ शुरुआत है। ये वर्टिकल फार्म भूरे पानी और काले पानी का पुनर्चक्रण करेंगे, पौधों के कचरे को जलाने से बिजली पैदा करेंगे (प्लाज्मा आर्क गैसीकरण के बारे में सोचें) जो इसके घटक अणुओं में अपशिष्ट को कम करेगा, और निरार्द्रीकरण से पानी का उत्पादन करेगा।

वर्टिकल फ़ार्मिंग की संभावना

- वनों की कम कटाई और भूमि उपयोग। इसका अर्थ है कम कटाव और कम बाढ़।
- परित्यक्त या अप्रयुक्त गुणों का प्रयोग उत्पादक रूप से किया जाएगा।
- फसलों को बाढ़, सूखा और बर्फ जैसी मौसम की स्थिति से सुरक्षित रखा जाएगा।
- वाहनों की आवाजाही में कमी जैसे फसलों का आसानी से सेवन किया जाता है।
- कोयले के उत्पादन पर निर्भरता कम करके कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन और प्रदूषण कमद्य
- पानी का ज्यादा प्रभावी ढंग से इस्तेमाल होता है।

वर्टिकल फ़ार्मिंग कैसे काम करती है

वर्टिकल फ़ार्मिंग कैसे काम करती है यह समझने के लिए चार महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं:

भौतिक लेआउट, प्रकाश, मृदा क्रियाधर, और सतत कारक।

सबसे पहले, वर्टिकल खेती का प्राथमिक लक्ष्य प्रति वर्ग मीटर अधिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना है और इसलिए फ़सलों को उगाने के लिए लंबवत ऊर्ध्वाधर रूप से रखा जाता है। तथा, कमरे में पूर्ण प्रकाश स्तर बनाए रखने के लिए प्राकृतिक और कृत्रिम रोशनी के एक पूर्ण संयोजन का उपयोग किया जाता है। प्रकाश क्षमता में सुधार के लिए रोटेटिंग बेड जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। तीसरी बात, मिट्टी के बजाय, हम हाइड्रोपोनिक्स (पौधों की जड़ों को एक पोषक बाथ में बांधना) या एरोपोनिक्स (पौधों की जड़ों को छोड़कर) ओर एक्वापोनिक ग्रोइंग माध्यमों का उपयोग करेंगे। पीट मोस या नारियल की भूसी और इसी तरह के बिना मिट्टी के माध्यम वर्टिकल फ़ार्मिंग में बहुत आम हैं। अंत में, वर्टिकल खेती पद्धति में खेती की ऊर्जा लागत को कम करने के लिए

*शोध छात्रा, **सहायक प्राध्यापक, सब्ज़ी विज्ञान विभाग, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, आ.न.दे.कृ. एवं प्रौ.वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या

विभिन्न सस्टेनेबिलिटी विशेषताओं का उपयोग किया जाता है। वास्तव में, वर्टिकल फ़ार्मिंग में पारंपरिक खेती की तुलना में 95 प्रतिशत कम पानी का उपयोग किया जाता है।

हाइड्रोपोनिक्स

हाइड्रोपोनिक्स मिट्टी के बिना पौधे उगाने की एक विधि है। पौधे की जड़ों को मिट्टी से सहारा और पोषण मिलने के बजाय, पौधे को एक निष्क्रिय विकसित माध्यम से उगाया जाता है जैसे कि कोकोपिट और एक पोषक–समृद्ध पानी के माध्यम से उगाया जाता है और पारंपरिक खेती की तुलना में लगभग 70 प्रतिशत कम पानी का उपयोग करता है। हाइड्रोपोनिक्स प्रणालियाँ कंकड़–पत्थरों और उर्वरक युक्त पानी से भरे एक गिलास के समान सरल हो सकती हैं या एक बड़े ग्रीनहाउस संरचना के रूप में जटिल हो सकती हैं जिसमें कोकोपीट से भरे मिट्टी के छर्रों / गर्तों के शय्या होते हैं जिन्हें समय–समय पर पोषक तत्व आपूर्ति की जाती है। पोषक तत्व फिल्म तकनीक (एनएफटी) भी एक प्रकार की हाइड्रोपोनिक खेती है जिसे आजकल कई वाणिज्यिक किसानों द्वारा अपनाया जाता है।

हाइड्रोपोनिक्स की आवश्यकताएं

हाइड्रोपोनिक्स 3 तरीकों से किया जा सकता है:

- प्रगतिशील किसान इसे वाणिज्यिक खेती में अपना सकते हैं।
- लोग इसे शौक के रूप में अपना सकते हैं।
- महानगरों में शहरी खेती के लिए सबसे फायदेमंद हो सकता है।

एनएफटी विधि की विशेषताएं और लाभः

- मिट्टी की जरूरत नहीं होती है।
- पानी प्रणाली में रहता है और इसका पुनः उपयोग किया जा सकता है, पानी की कम खपत हो सकती है।
- पोषण स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है
- स्थिर, उच्च पैदावार और फसल फसल की कटाई के बीच कम समय।
- अत्यधिक पौष्टिक, आकर्षक फसलों का उत्पादन।
- मिट्टी की तुलना में कम पीड़क एवं रोग आक्रमण से छुटकारा पाना आसान होता है।
- कटाई में आसानी और प्रत्यक्ष बिक्री से आय का स्रोत।

एरोपोनिक्स

वायु विज्ञान (aeroponics) वायु या धुंध (mast) के वातावरण में पौधों के उगाने की प्रक्रिया है। एरोपोनिक उगाने का मूल सिद्धांत पौधों को एक बंद या अर्ध–बंद वातावरण में, पौधे की लटकती जड़ों का छिड़काव करके और एक परमाणुकृत या छिड़काव के साथ कम तने के साथ, एक सच्चे एरोपोनिक उपकरण में पोषक–समृद्ध जल समाधान संयंत्रों में प्रकाश संश्लेषण के लिए 450 पीपीएम से 780 पीपीएम तक सीओ 2 सांद्रता तक 100 प्रतिशत पहुंच है। फसल वृद्धि की उच्च दर और जल–विद्युत की तुलना में 70 प्रतिशत कम पानी का उपयोग करता है।

एक्वापोनिक्स

क्वापोनिक्स एक रीसर्क्युलेटिंग प्रणाली है जो एक कुशल बंद लूप प्रणाली बनाने के लिए हाइड्रोपोनिक्स (बिना मिट्टी के पानी में पौधे उगाना) और जलीय कृषि (मछली पालन) को जोड़ती है। एक्वापोनिक्स इन दोनों का उपयोग एक सहजीवन संयोजन में करता है जिसमें पौधों को जलीय जानवरों का निर्वहन या अपशिष्ट खिलाया जाता है। इसके बदले में सब्ज़ी उस पानी को साफ करती है जो मछली के पास जाता है। मछली और उनके कचरे के साथ–साथ सूक्ष्म जीव पौधों के पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये लाभकारी जीवाणु पौधों की जड़ों के बीच के स्थानों में इकट्ठा होते हैं और मछली के अपशिष्ट और ठोस पदार्थों को उन पदार्थों में परिवर्तित करते हैं जिनका उपयोग पौधे कर सकते हैं। इसका परिणाम जलीय कृषि और बागवानी के बीच एक पूर्ण सहयोग है।

आवश्यकताएं

- 6.8 से 7.2 तक का एक पीएच अच्छा है, पौधों, मछली और पानी के भीतर बैक्टीरिया हैं और उनमें से प्रत्येक में एक अलग पीएच की आवश्यकता है। मछली के कचरे के कारण, पीएच अम्लीय हो जाएगा और आपको एक्वापोनिक संगत पीएच एडजेस्टर का उपयोग करने की आवश्यकता होगी. कभी–कभी पीएच कम करते समय पानी की कठोरता का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है।
- प्रणाली में एकमात्र इनपुट मछली का भोजन है।

- पंपों और वाटर हीटर के लिए ऊर्जा।
- रसायनिक उर्वरकों या कीटनाशकों का कोई उपयोग नहीं किया जाता है।

वर्टिकल फ़ार्मिंग गुण और दोष

वर्टिकल फ़ार्मिंग के फायदे

- 2050 तक, दुनिया की लगभग 80 प्रतिशत आबादी शहरी क्षेत्रों में रहने की उम्मीद है, और बढ़ती आबादी के कारण भोजन की मांग बढ़ जाएगी। इस तरह की चुनौती के लिए तैयारी करने में वर्टिकल फ़ार्मिंग का कुशल उपयोग शायद महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- वृद्धि और वर्ष–भर फसल उत्पादनः वर्टिकल फ़ार्मिंग हमें बढ़ते क्षेत्र के उसी वर्ग फुटेज से अधिक फसलों का उत्पादन करने में मदद देती है। वास्तव में, एक इंडोर क्षेत्र का एक एकड़ कम से कम 4–6 एकड़ आउटडोर क्षमता के बराबर उत्पादन करता है।
- खेती में पानी का कम उपयोगः वर्टिकल फ़ार्मिंग हमें सामान्य खेती के लिए आवश्यक 70 से 95 कम पानी के साथ फसलों का उत्पादन करने की मदद देती है।
- प्रतिकूल मौसम की स्थिति से प्रभावित नहींः– किसी क्षेत्र में फसलों पर प्राकृतिक आपदाओं जैसे मूसलाधार वर्षा, चक्रवात, बाढ़ या गंभीर सूखे से प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वर्टिकल फ़ार्मिंग में प्रतिकूल मौसम की मार महसूस करने की कम संभावना है, जो पूरे वर्ष फसल उत्पादन की अधिक निश्चितता प्रदान करता है।
- जैविक फसलों के उत्पादन में वृद्धिः चूंकि फसलों का उत्पादन रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग के बिना एक अच्छी तरह से नियंत्रित इनडोर वातावरण में होता है, वर्टिकल फ़ार्मिंग हमें कीटनाशक मुक्त और जैविक फसलों को उगाने की अनुमति देती है।
- मानव और पर्यावरण के अनुकूलः इनडोर वर्टिकल फ़ार्मिंग पारंपरिक खेती से जुड़े व्यावसायिक खतरों को कम कर सकती है।
- किसानों को भारी कृषि उपकरणों, मलेरिया, जहरीले रसायनों आदि से संबंधित खतरों का सामना नहीं करना पड़ता है।

वर्टिकल फ़ार्मिंग की सीमाएं

- **कोई स्थापित अर्थशास्त्र नहींः** इस नई खेती पद्धति की वित्तीय व्यवहार्यता अनिश्चित बनी हुई है। कृषि के लिए स्किस्क्रैपर्स के निर्माण की लागत, प्रकाश, हीटिंग और श्रम जैसी लागत वर्टिकल फ़ार्मिंग के उत्पादन से प्राप्त लाभों से अधिक हो सकती है। 60 हेक्टेयर वर्टिकल फार्म के लिए इमारत की लागत 100 मिलियन डॉलर से अधिक हो सकती है।
- **परागण के साथ कठिनाइयांः** कीटों की उपस्थिति के बिना नियंत्रित वातावरण में वर्टिकल खेती होती है। इस प्रकार, परागण प्रक्रिया हाथ से की जाती है जो श्रम गहन और महंगा होगा।
- **श्रम लागतः** ऊर्ध्वाधर फ़ार्मिंग में अत्यधिक कुशल श्रमिकों की आवश्यकता के कारण श्रम लागत बहुत अधिक होती है। इसलिए, श्रमिकों की घंटे की लागत सामान्य रूप से कृषि की तुलना में काफी अधिक होती है। और वर्टिकल फ़ार्मिंग प्रौद्योगिकियों के लिए महत्वपूर्ण प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिससे श्रम लागत में वृद्धि होती है।
- **कम नौकरियांः** वर्टिकल फ़ार्मिंग में स्वचालन से कम श्रमिकों की आवश्यकता हो सकती है।मैनुअल परागण वर्टिकल खेती में अधिक श्रम प्रधान कार्यों में से एक हो सकता है।
- **कम कामगार दक्षताः** एक वर्टिकल फार्म का लेआउट श्रमिकों के लिए प्रत्येक परत तक पहुंचने के लिए एक चुनौती पेश कर सकता है। ऊपरी परतों पर चढ़ाई करने में समय और ऊर्जा लगता है, जिससे समग्र कर्मचारी दक्षता कम होती है।
- **प्रौद्योगिकी पर बहुत अधिक निर्भरताः** संपूर्ण वर्टिकल फ़ार्मिंग प्रकाश, तापमान बनाए रखने और आर्द्रता के लिए विभिन्न तकनीकों पर अत्यधिक निर्भर है। केवल एक दिन के लिए बिजली खोने से एक वर्टिकल फार्म के लिए बहुत महंगा साबित हो सकता है।

देशी गाय के दूध की महत्ता

डी0 के0 श्रीवास्तव*, एस0के0 वर्मा**, एवं ओ0 पी0 वर्मा***

विभिन्न विविधताओं से परिपूर्ण भारतवर्ष में गाय को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इसे कामधेनु व मॉ की पदवी दी गयी है। इसका दूध हर वर्ग के व्यक्तियों एवं बच्चों के लिए पौष्टिक, पाचनशील और बुद्धि विकास में कारगर होता है। भारत में ज्यादातर देशी नस्ल की गाय पालने की परम्परा रही है जिसमें बहुत सी खूबियॉ पायी जाती है। देशी गाय का पालन लगभग 80 प्रतिशत किया जा रहा है जो कि प्रतिदिन 4–5 लीटर दूध देते हुए विदेशी नस्ल की गायों की अपेक्षा ज्यादा फायदेमन्द है। देशी गायों में रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होने के साथ–साथ इनको कम आहार एवं देख–भाल (प्रबन्धन) की आवश्यकता होती है। देशी गाय बदलते मौसम के प्रति भी आसानी से अनुकूल हो जाती है। बाजार में देशी गाय के दूध की कीमत अधिक प्राप्त होती है एवं इससे बनने वाले घी का भी मूल्य अधिक होता है। पशुपालक देशी गायों को कम खर्च में पाल सकता है।

देशी गाय का दूध गुणकारी होता है: देशी गायों में एक अलग तरह की विशेषता होती है जो दुनिया की अन्य गौ नस्लों में नही होती है। भारतीय नस्ल की गाय के शरीर में सूर्य ग्रन्थि पायी जाती है जो दूध को गुणकारी और अमूल्य औषधि में परिवर्तित कर देती है। देशी गायों के दूध मे एक विशेष प्रोटीन पाया जाता है जो हमे दिल की बीमारी एवं मधुमेह से लडने में सहायक होता है। दूध में प्रोटीन, कैल्शियम, राइबोफ्लेविन तथा बिटामिन बी 2 पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन ए., डी., के. और ई. सहित मैग्नीशियम, आयोडीन, फास्फोरस जैसे अन्य खनिज पदार्थ भी मौजूद होते है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि देशी गाय के दूध में ए2 प्रकार की प्रोटीन पायी जाती है। इसी कारण देशी गाय के दूध को ए2 दूध कहा जाता है।

कैसे होता है ए2 दूध फायदेमन्द : भारतीय (देशी) गायों की नस्लें जैसे – साहीवाल, गिरि, थारपारकर, लाल सिंधी, हरियाणा आदि से प्राप्त दूध में ए2 प्रकार की प्रोटीन पायी जाती है जो कि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाता है। शरीर में कोलेस्ट्राल का स्तर कम करके दिल की बीमारी के खतरे को कम करता है। यह दूध कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी से बचाता है तथा शरीर के पाचनतन्त्र के लिए भी लाभदायक होता है। इन्ही गुणों के कारण छोटे बच्चों को केवल देशी गाय का दूध ही पिलाया जाता है।

कैसे होता है ए1 दूध नुकसानदेह : विदेशी गायों की नस्लों जैसे होल्सटीन, फ्रीजियन, आयरशायर, जर्सी आदि के दूध में ज्यादातर ए1 प्रकार की प्रोटीन पायी जाती है। ए1 दूध पीने के बाद यह एक प्रकार का विषाक्त प्रोटीन तत्व बी.सी.एम.–7 यानी बीटा फेसोमोर्फिन बनाता है जो शरीर के सुरक्षातन्त्र को खत्म करके अनेक असाध्य रोगों का कारण बनता है। इस दूध को बच्चों को पिलाने से डायविटीज हो सकती है। यह दूध हमारे शरीर के पाचन तन्त्र को खराब करने के साथ–साथ दिल की बीमारी होने की सम्भावना को बढाता है।

ए1 एवं ए2 दूध के पाचन की रासायनिक क्रिया: भारत में गाय की 98 प्रतिशत नस्ले ए2 प्रकार के प्रोटीन वाली अर्थात विष रहित होती है। इसके दूध के प्रोटीन की अमीनो एसिड चेन (बीटा कैसीन ए2) में 67वें स्थान पर प्रोलीन है और यह अपने साथ की 66वीं कडी के साथ मजबूती के साथ जुडी रहती है तथा पाचन के समय टूटती नही है। 66वीं कडी में अमीनों एसिड आइसोल्यूसीन होता है जबकि विदेशी गोवंश में अधिकांश गायों के दूध में बीटा कैसीन ए1 नामक प्रोटीन पाया गया है। हम जब दूध को पीते है और इसमें शरीर के पाचक रस मिलते है व इनका पाचन शुरू होता है तब इस दूध के ए1 नामक प्रोटीन की 67वीं कमजोर कडी टूटकर अलग हो जाती है और इसके हिस्टाडीन से बी.सी.एम.–7 (बीटा केसोमार्फिन–7) का निर्माण होता है। सात कडियों वाला यह विषाक्त प्रोटीन बी.सी.एम.–7 युक्त दूध सारे रोगों को उत्पन्न करने में सहायक होता है।

उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए पशुपालक भाइयों को भारतीय (देशी) नस्ल की गायों का पालन करना चाहिए जिससे वे अपने परिवार व समाज को पौष्टिक एवं पाचनशील ए2 टाइप का गुणकारी दूध उपलब्ध कराते हुए प्रतिरोधक, क्षमतावान एवं रोगमुक्त भारत के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकें तथा देशी गाय के दूध एवं उनसे निर्मित अन्य उत्पादों से अधिक आय अर्जित करने के साथ ही साथ स्वरोजगार का भी सृजन कर सकते है।

*वि.व.वि. (पशु विज्ञान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, मनकापुर, गोण्डा–।।, ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिद्धार्थ नगर

कृषि मोबाइल ऐप्सः भारतीय कृषि का परिवर्तन

रूपन रघुवंशी* एवं अश्वनी कुमार सिंह**

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कम योगदान के बावजूद, यह क्षेत्र भारत की आधी से अधिक आबादी को रोजगार प्रदान करता है। भारतीय कृषि विस्तार प्रणाली के लिए बड़ी संख्या में किसानों तक पहुँचना एक बड़ी चुनौती है। आधुनिक डिजिटल उपकरण अर्थात. मोबाइल ऐप्स, इंटरनेट, एक्सपर्ट सिस्टम आदि इसमें प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। डिजिटल उपकरणों ने हाल ही में विकासशील देशों में अद्यतन जानकारी के माध्यम से कृषि उत्पादन प्रणाली और विपणन को बदलने की अपनी क्षमता दिखाई है जैसे बीज, उर्वरक, कीट–रोग प्रबंधन, मौसम की स्थिति, पानी की उपलब्धता, खाद्य प्रसंस्करण, संशोधित कृषि पद्धतियाँ, बाजार मूल्य आदि है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के तेजी से विकास के साथ, किसानों द्वारा कृषि उत्पादकता में सुधार के लिए सूचना और डेटा को प्रभावी ढंग से उत्पन्न, संग्रहीत और उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए, मोबाइल एप्लिकेशन (ऐप) का उपयोग करके स्मार्ट खेती प्रौद्योगिकियों को नियोजित किया जा रहा है जो लागत कम करने, पैदावार बढ़ाने और मुनाफा बढ़ाने में मदद करते हैं।

मोबाइल ऐप्सः ग्रामीण भारत इन दिनों तेजी से डिजिटलीकरण और प्रौद्योगिकी की ओर बढ़ रहा है। बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप के एक अध्ययन द राइजिंग कनेक्टेड कंज्यूमर ''इन रूरल इंडिया'' की रिपोर्ट के अनुसार, ग्रामीण भारत की यह हिस्सेदारी 2020 तक बढ़कर 48 प्रतिशत हो गई है। इसके अलावा, जबकि 58 प्रतिशत भारतीय परिवार अभी भी कृषि पर निर्भर हैं। आजीविका का प्रतिष्ठित स्रोत, बढ़ते और समृद्ध भारत के लिए डिजिटल कृषि पर अधिक ध्यान देने का समय आ गया है। इसके अलावा, किसानों को खेती में मार्गदर्शन देने के लिए फार्मिंग मोबाइल ऐप सबसे सुविधाजनक और उपयोगी माध्यम हैं। यह आपको उचित वैज्ञानिक तरीके से खेती करने, फसल उगाने, किसी भी फसल या सब्जियों की बुआई या कटाई करने के लिए दिशा निर्देश देता है। किसान अपनी खेती में कीट–पतंगों के हमले या किसी भी समस्या से संबंधित समस्याओं को आसानी से हल कर सकते हैं, जो उन्हें कठिन परिस्थिति में डालती हैं।

एक कृषि मोबाइल ऐप कृषि क्षेत्र में किसानों का सबसे अच्छा दोस्त हो सकता है, जो एक भी पैसा खर्च किए बिना उनकी उत्पादकता बढ़ा सकता है। आप इसे अपने गूगल प्ले स्टोर से बिना एक भी रुपया चुकाए आसानी से डाउनलोड कर सकते हैं।

कुछ बेहतरीन और सबसे विश्वसनीय कृषि ऐप्स, जो क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध हैं, यहां दिए गए हैं।

किसानों के लिए कृषि ऐप्स

1. इफको किसान एग्रीकल्चर (IFFCO Kisan Agriculture): इफको किसान कृषि ऐप, 2015 में लॉन्च किया गया और इफको किसान द्वारा प्रबंधित किया गया, जो भारतीय किसान उर्वरक सहकारी लिमिटेड की सहायक कंपनी है। इसका उद्देश्य भारतीय किसानों को उनकी आवश्यकताओं से संबंधित अनुकूलित जानकारी के माध्यम से सूचित निर्णय लेने में मदद करना है। इसके अलावा, उपयोगकर्ता प्रोफाइलिंग चरण में चयनित भाषा में पाठ, इमेजरी, ऑडियो और वीडियो के रूप में कृषि सलाह, मौसम, बाजार मूल्य और कृषि सूचना पुस्तकालय सहित विभिन्न सूचनात्मक मॉड्यूल तक पहुंच सकता है। ऐप किसान कॉल सेंटर सेवाओं से संपर्क करने के लिए हेल्पलाइन नंबर भी प्रदान करता है।

2. कृषि जागरण (Krishi Jagran): कृषि जागरण ऐप ट्रेंडिंग कृषि समाचार, खेती गाइड, फसल कैलेंडर, फसल सुरक्षा, कीट और रोग प्रबंधन, सब्सिडी, कृषि में करियर और कृषि मशीनीकरण के बारे में सभी जानकारी प्रदान करता है। इस प्लेटफॉर्म के माध्यम से किसान फसल संबंधी सभी जानकारी अपनी उंगलियों

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभारी, कृषि विज्ञान केंद्र, हैदरगढ़, बाराबंकी

पर प्राप्त कर सकते हैं। यह आसानी से सुलभ कृषि मंच किसानों को दुनिया से जोड़ता है और उन्हें सभी प्रासंगिक कृषि–संबंधित जानकारी प्रदान करता है।

3.पूसा कृषि (Pusa Krishi): यह 2016 में केंद्रीय कृषि मंत्री द्वारा लॉन्च किया गया एक सरकारी ऐप है और इसका उद्देश्य किसानों को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने में मदद करना है, जो किसानों को रिटर्न बढ़ाने में मदद करता है। यह ऐप किसानों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर) द्वारा विकसित फसलों की नई किस्मों, संसाधन–संरक्षित खेती प्रथाओं के साथ–साथ कृषि मशीनरी से संबंधित जानकारी भी प्रदान करता है और इसके कार्यान्वयन से किसानों को रिटर्न बढ़ाने में मदद मिलती है।

4. एग्री ऐप (Agri App): एग्री ऐप पूरी तरह से किसान–अनुकूल ऐप है जो फसल उत्पादन, फसल सुरक्षा और सभी प्रासंगिक कृषि–संबद्ध सेवाओं पर पूरी जानकारी प्रदान करता है। यह किसानों को "उच्च मूल्य, कम उत्पाद" श्रेणी की फसलों से लेकर किस्मों, मिट्टी/जलवायु, कटाई और भंडारण प्रक्रियाओं से संबंधित सभी जानकारी प्रदान करता है। इसके अलावा, इस ऐप पर विशेषज्ञों के साथ चैट करने, वीडियो–आधारित शिक्षा, नवीनतम समाचार और उर्वरक, कीटनाशकों आदि के लिए ऑनलाइन बाज़ार का विकल्प भी उपलब्ध है।

5. प्लांटिक्स (Plantix): प्लांटिक्स आपके एंड्राइड फोन को फसलों के मोबाइल चिकित्सक में परिवर्तित कर देता है, जिसके ज़रिये आप कुछ ही क्षणों में फसलों के कीटों तथा रोगों का सटीक तौर पर पता लगा सकते हैं। प्लांटिक्स फसलों के उत्पादन तथा प्रबंधन के लिए संपूर्ण सेवा प्रदान करता है। अपनी बीमार फ़सलों के लिए निदान और सर्वोत्तम उपचार प्राप्त करें। यह ऐप पौधों की बीमारियों के लिए स्वचालित छवि पहचान प्रदान करता है और 60 विभिन्न फसलों पर लगभग 400 नुकसान की पहचान करने में सक्षम है। ऐप का उपयोग बहुत आसान है: किसान को ऐप डाउनलोड करना होगा, फिर अपने स्मार्टफोन से फसल की तस्वीर लेनी होगी और सॉफ्टवेयर समस्या की पहचान करेगा। यदि किसी बीमारी का पता चलता है तो प्लांटिक्स सही उत्पाद खोजने के लिए सिफारिशें और सहायता देता है। ऐप किसानों को उनकी बीमारी के प्रबंधन – फसल की पैदावार और उपयोग किए जाने वाले कीटनाशकों की मात्रा में सुधार – पर सूचित निर्णय लेने का अधिकार देता है। ऐप कई अन्य सुविधाएं भी प्रदान करता है जैसे कृषि समुदाय के भीतर आदान–प्रदान की सुविधा, फसल सलाह और फसल के बाद की जानकारी।

कृषि क्षेत्र में मोबाइल ऐप्स के उपयोग के प्रमुख लाभ:

- किसानों को तापमान, वर्षा, धूप के घंटे आदि जैसे वास्तविक समय के मौसम डेटा की जानकारी तक पहुंच मिलती है, जो सीधे कृषि निर्णय लेने को प्रभावित करती है।
- देश भर के विभिन्न बाज़ारों में विभिन्न कृषि वस्तुओं की कीमतों, गुणवत्ता और आगमन की मात्रा पर डेटा प्रदान करके बाज़ार आसूचना।
- मोबाइल ऐप्स के माध्यम से फसलों/पशुधन /मुर्गी/मत्स्य पालन आदि की ऑनलाइन निगरानी और प्रबंधन संभव है।
- इन ऐप्स का उपयोग करके महत्वपूर्ण मशीनरी और उपकरणों की जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है।
- मोबाइल ऐप्स का उपयोग सरकार द्वारा किसानों को इनपुट और सब्सिडी वितरण के रूप में दी जाने वाली सेवाएं प्रदान करने के लिए किया जा सकता है।
- यह डेटा को पुनः रिकॉर्ड करके, उसका विश्लेषण करके और विभिन्न उद्यमों के लिए उपयुक्त अनुशंसा देकर प्रभावी कृषि प्रबंधन की सुविधा प्रदान करता है।
- श्रेणीवार आसान पुनप्राप्ति और समय की बर्बादी के बिना विशाल फसल जानकारी का संदर्भ देना।
- यह कृषि उपज के बेहतर विपणन और भंडारण में मदद करता है।

अक्टूबर माह में किसान भाई क्या करें

फसलो में
डॉ. आर.आर. सिंह
प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

1. दांतेदार नरेन्द्र हंसिया से अगेती धान की कटाई वैहिक परिपक्वता पर करें।
2. रोग ग्रसित धान की बाली को निकाल कर झूठा कड़वा रोग का नियन्त्रण करें।
3. उपयुक्त नमी पर 20 अक्टूबर से सिंचित दशा में जौ की आजाद, के 141 लक्षण प्रजातियों की बोआई प्रारम्भ करें।
4. चने की टाइप–3, राधे के 850, काबुली, पन्त जी 144 एवं उकठा अवरोधी, मटर की टा 163, रचना मालवीय मटर 2, पन्तनगर 5, पाउडरी मिल्डूय अवरोधी एवं मसूर की टा 8, पन्त एल 406 व 234 प्रजातियों की बोआई राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने के बाद ही करें।
5. चना और मटर का 75–100 किग्रा तथा मसूर का 30–40 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर बोयें। कतार से कतार की दूरी चना में 30–35 सेमी, मटर में 30 सेमी तथा मसूर 20–25 सेमी रखें।
6. तोरिया की बोआई के 25 दिन बाद पहली सिंचाई करें तथा नत्रजन 30 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से टापड्रेसिंग करें।
7. सरसों एवं लाही में बोआई के 15–20 दिन के अन्दर विरलीकरण से आपसी दूरी 15 सेमी कर दें।

सब्जी एवं उद्यान में
डॉ. शशांक शेखर सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

1. बसन्तकालीन टमाटर, मिर्च, बैंगन तथा मध्यम पिछेती फूलगोभी, पातगोभी, गांठगोभी जिसकी पौध सितम्बर के प्रथम पखवारे में डाले हों उसकी रोपाई कर दें।
2. सितम्बर के दूसरे पखवारे में डाली गयी पिछेती पातगोभी की पौध की रोपाई द्वितीय पखवारे में अवश्य कर दें।
3. अगेती आलू को 10 अक्टूबर तक तथा मुख्य फसल को अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह तक बो दें।
4. आम, अमरूद, नींबू, कटहल आदि में संस्तुत उर्वरक तथा खाद का प्रयोग करें।
5. पपीता लगाने का कार्य 15 अक्टूबर तक कर दें।
6. नये बागों में निकाई–गुड़ाई सम्पन्न करें।
7. नये बागों के बीच में सहफसली खेती के लिये रबी की उपयुक्त फसलों की बोआई करें।
8. परवल से अधिक उपज प्राप्त करने के लिये उन्नतशील प्रजातियां जैसे एफपी 3, एफपी 4, स्वर्णरेखा, बीबीआरपीजी 1, आईआईवी आरपीवी 105 की प्रवर्धन का उचित समय सितम्बर होता है परन्तु नदियों के किनारे दियरा भूमि पर परवल की रोपाई अक्टूबर, नवम्बर में की जाती है। परवल का प्रवर्धन मुख्य रूप से बेलों के द्वारा होता है इसको लगाते समय प्रत्येक दस मादा पौधों के बाद एक नर पौधे की बेल लगाना आवश्यक होता है।

फसल सुरक्षा
डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

1. सैनिक कीट का नियन्त्रण मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूल 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर से करें।
2. बीज शोधन 2 ग्राम थीरम+1 ग्राम कार्बेन्डाजीम प्रति किग्रा बीज की दर से करें।
3. खरपतवार नियन्त्रण के लिये एक किग्रा वासालीन 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर जमाव के पूर्व छिड़काव करें।
4. सब्जी बीज को 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम दवा को प्रति किग्रा बीज को शोधित कर बुवाई करें।
5. आम के गुच्छा रोग की रोकथाम हेतु एन ए 200 पी पी एम अर्थात 200 मिग्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. आर.आर. सिंह, प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : ऊसर में कौन–कौन सी फसल ली जा सकती है और कब–कब किन–किन समयों में?
(श्री कप्तान सिंह, ग्राम हलियापुर, जनपद सुल्तानपुर)
उत्तर : ऊसर भूमि में उपयुक्त सुधारकों जैसे जिप्सम अथवा पाइराइट मई–जून में प्रयुक्त करने के उपरान्त जुलाई में धान की रोपाई करनी चाहिए। धान कटने के बाद रबी में जौ अथवा गेहूं की फसल उगानी चाहिए। ऐसे में खेतों को प्रायः किसान भाई गर्मी में खाली छोड़ देते हैं जिनसे हानिकारक लवण पुनः जमीन के सतह पर जमा हो जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि गर्मी में भी कोई न कोई फसल ली जाये। इस प्रकार तीन वर्ष लगातार धान जौ/गेहूं ढैंचा क्रम अपनाना चाहिए।

प्रश्न : अच्छे किस्म का रबी से सम्बन्धित फसलों के बीज कहां प्राप्त करें?
(श्री वीरेन्द्र कुमार, ग्राम इसौली भारी, जनपद अयोध्या)
उत्तर : चना, मटर, तोरिया, सरसों तथा गेहूं का बीज आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या के बीज तकनीकी विभाग तथा चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर से प्राप्त कर सकते हैं, वैसे प्रत्येक जनपद के कृषि विभाग द्वारा भी उन्नत किस्म का बीज उपलब्ध कराया जाता है

प्रश्न : बरानी दशा में गेहूं की खेती में उर्वरक की कितनी मात्रा डालें?
(श्री अशोक पाण्डेय, ग्राम सरूरपुर, जनपद अयोध्या)
उत्तर : बरानी दशा में गेहूं की खेती के लिये 40:30:30 किग्रा के अनुपात में क्रमशः नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। उर्वरक की यह सम्पूर्ण मात्र बुवाई के समय कूंड़ों में बीज के दो–तीन सेमी नीचे नाई/चोंगा द्वारा बेसल ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए। बाली निकलने से पूर्व वर्षा हो जाने पर 15 से 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की टापड्रेसिंग लाभजनक होती है। यदि वर्षा न हो तो 2 प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव किया जाना फायदेमंद होगा

प्रश्न : राई सरसों के प्रमुख रोग कौन–कौन से हैं तथा उनका नियंत्रण कैसे करें?
(श्री सौरभ सिंह, ग्राम–हलियापुर, जनपद सुल्तानपुर)
उत्तर : राई सरसों में लगने वाले रोगों में झुलसा, सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग प्रमुख है। झुलसा रोग होने पर मैंकोजेब 2 किग्रा अथवा कॉपर आक्सीक्लोराइड 3 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। सफेद गेरूई के नियंत्रण हेतु रीडोमिल (एम जेड 78) 2.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। तुलासिता रोग होने पर सफेद गेरूई के नियंत्रण वाले रसायन का प्रयोग करना चाहिए।

प्रश्न : चने में उकठा रोग लग जाता है क्या करें?
(श्री प्रहलाद सिंह, ग्राम–नवाबगंज, जनपद गोण्डा)
उत्तर : चने में उकठा रोग से बचाव हेतु गर्मियों में मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने पर मृदाजनित रोगों का नियंत्रण करने में सहायता मिलती है। जिन खेत में उकठा रोग अधिक लगता हो उसमें तीन–चार वर्ष तक चना की फसल नहीं लेना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीज को 5 ग्राम ट्राइकोडरमा या 4 ग्राम ट्राइकोडरमा+1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से शोधित कर बुवाई करना चाहिए।

प्रश्न : अण्डा उत्पादन हेतु मुर्गियों की कौन–सी नस्ल अच्छी पायी जाती है?
(श्री सरफराज, ग्राम–बल्दीराय, जनपद सुल्तानपुर)
उत्तर : अण्डा उत्पादन हेतु व्हाइट लेगहार्न, रोड आइसलैण्ड रेड नस्लें अच्छी पायी गयी हैं परन्तु व्यवसायिक अण्डा उत्पादन हेतु व्हाइट लेगहार्न नस्ल सबसे अच्छी पायी गयी है जो एक वर्ष में लगभग 280 से 320 अण्डे का उत्पादन करता है परन्तु अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिये इसका वैज्ञानिक तरीके से प्रबन्धन करना आवश्यक है। अधिक जानकारी हेतु कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या से सम्पर्क करें।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	35.00
जिमीकन्द की खेती	25.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	25.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	75.00
फसल उत्पादन तकनीक	50.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	25.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	75.00
गन्ने की आधुनिक खेती	25.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	35.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	25.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	35.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	40.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्ज़ियों की उत्पादन तकनीक	35.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	40.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	35.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	35.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषकः
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से डॉ. आर.आर. सिंह अपर निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित